जिन शासन गौरव आध्यात्म योगी बाल ब्रह्मचारी चमत्कारी दिव्य विभूति पूज्य गुरदेव स्वामी श्री श्री 1008 श्री रुप चन्द जी महाराज की जीवन झांकी एवं समाधि स्थल जगरावां

महाश्रमणी श्री राजेश्वरी जी महाराज की अन्तेवासी
प्रवचन प्रभाविका कर्मयोगिनी

महासाध्वी श्री सुनीता जी महाराज
अपनी सुशिष्या
तप चक्रेश्वरी, तपचक्रचूड़ामणि महा साध्वी श्री शुभ जी महाराज की निरन्तर
लम्बी तपस्या
निराहार केवल गर्म जल के अधार पर
के तप महोत्सव के उपलक्ष्य में
ebook library से मोबाईल पर उपलब्ध

समर्पण

त्यागमूर्ति तपोनिष्ठ, ब्रह्मचर्यव्रत प्रियम्
शास्त्रज्ञ श्रमणं भिक्षु रुपचन्दं नमामि अहम्
जिनका दीप मेरे लिए प्रकाश स्तम्भ है,
जिनके विचार मेरे लिए पथ प्रदर्शक हैं।
जिनका आचार मेरे लिए अनुकरणीय है,
जिनका पथ प्रदर्शन मेरे लिए वरदान है
ऐसे श्रद्धेय तपस्विन चमत्कारिक महापुरुष
महान तपस्वी श्री रुपचन्द जी महाराज के
पावन चरण सरोजों में सविनय, सभक्ति
सादर समर्पित है
साध्वी सुनीता जी महाराज

श्री रुप गुरवे नमः
इतिहास की स्वर्णिम कड़ी
परम श्रद्धेय महान तपस्वी
स्वामी श्री रुपचन्द जी महाराज

भारत वर्ष ऋषियों मुनियों का देश कहलाता है तथा भारतीय संस्कृति की अमिट छाप सारे विश्व पर है। जैन संस्कृति में श्रमण संस्कृति का गौरवपूर्ण स्थान है। जिस काल में पुण्य पाप का रूप धारण कर लेते हैं, धर्म अधर्म का जामा पहन लेता है, चारों तरफ अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है तथा हिंसा अहिंसा पर अपनी छाप जमा लेती है ऐसे समय में मानव जाति का उद्धार करने के लिए कोई दिव्य विभूति इस संसार में जन्म लेती है। जिसके प्रभाव से सभी पापों का क्षय होकर पुण्य का अर्जन होता है। श्रमण संस्कृति को अलंकृत करने वाली दिव्य विभूति, चमत्कारी तपस्वी महान पुरुष श्री श्री 1008 स्वामी श्री रुपचन्द जी महाराज का तपोमय जीवन इतिहास की एक ऐसी कड़ी है जिसके बिना इतिहास अपूर्ण प्रतीत होता है। उस महामुनीश्वर कर्मयोगी का जीवन अन्धकार में भटकती मानव जाति के लिए वरदान है। उनका पावन नाम लेने मात्र से जन्म जन्मान्तर के संकट दूर होते हैं, मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं तथा जीवन में परम सुख और शान्ति का संचार होता है। यह उस महान पुरुष की दिव्य गाथा है जिन्होंने पाँच महाव्रतों का कठोरता से पालन करते हुए अहिंसा, अभय तथा अभिग्रह की ध्वज को लहराते हुए नगर-नगर, ग्राम-ग्राम घूम कर प्राणी मात्र का उद्धार किया तथा उनके निष्काम तप ने जैनत्व की मान्यता को अमर गौरव प्रदान किया।

परम श्रद्धेय परम पूज्य स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज एक सच्चे सन्त तथा चमत्कारी महापुरुष थे। उनका चिन्तन करने से हर प्रकार की समस्या का समाधान मिल जाता है तथा मन की मुरादें पूरी होती हैं। वह निस्पृही, महान योगी, महान तपस्वी तथा दृढ़ निश्चय वाले सरल और संयमी संत थे। उनके गुणों का वर्णन करने की क्षमता भला किस में है। कोई भी प्राणी श्रद्धा और विश्वास के साथ उनके पावन चरणों में लग जाता है, तथा उनकी शरण में चला गया उसका जीवन धन्य हो जाता है। वह अपनी दिव्य प्रेरणा से ऐसा प्रकाश पैदा करते हैं जिसकी चमक लेकर

सारा देश अलोकित हो उठता है। उसी अलोक से प्रेरणा लेकर संयम की अपूर्व अराधिका महासाध्वी श्री राजेश्वरी जी महाराज की सुशिष्या प्रवचन प्रभाविका, कर्मयोगिनी महासाध्वी श्री सुनीता जी महाराज ने कुछ चरित मुक्ताओं को श्रद्धाभाव से गूंथकर महाराज श्री जी के जीवन गाथा का गुलदस्था पाठकों तक पहुँचाने का सरल प्रयास किया है। पूर्ण विश्वास है कि इस महान अध्यात्म योगी की पावन गाथा से प्रेरणा लेकर श्रद्धालु अपने जीवन के धन्य बनाएंगें।

प्रवचन प्रभाविका, कर्मयोगिनी, महासाध्वी श्री सुनीता जी महाराज एवम् उनकी सुशिष्या तपज्योति, तपसिंहनी, तप चक्रश्वरी, तपसूर्या, तपचक्र चूड़ामणि महासाध्वी श्री शुभ जी महाराज को महान चमत्कारी महापुरुष स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज के प्रति अटूट श्रद्धा है। वह जो कुछ भी हैं अपने आपको परम श्रद्धेय गुरुदेव का प्रसाद मानती है। किसी भी कार्य करने से पूर्व उनका पावन आशीर्वाद लेकर फिर कार्य प्रारम्भ करती हैं। गुरु महाराज का इन पर अपार कृपा दृष्टि है। रुप नगरी जगराओं मे 1997-1998 के चातुर्मास में तप चक्र, चूड़ामणी महासाध्वी श्री शुभ जी महाराज के अल्प दीक्षायु में 265 व्रतों के विश्व रिकार्ड के उपलक्ष्य में 22 मार्च 1998 को महाराज श्री की वार्षिक दीक्षा महोत्सव के शुभ दिन मनाये गये तप अभिनन्दन समारोह वाले दिन 20-25 हजार श्रद्धालुओं के समक्ष समाधि स्थल पर संगमरमर के पत्थरों से लगभग साढ़े तीन घंटे का केसर युक्त अमृत जल का निकलना इस सदी में उन पर अपार कृपा का स्पष्ट प्रमाण है। ऐसा साक्षात् चमत्कार आज तक देखने में तो क्या सुनने में भी नहीं आया। हम किन शब्दों से कर्मयोगिनी महासाध्वी श्री सुनीता जी महाराज का गुणगान करें जिन्हों ने पूर्ण श्रद्धा के साथ उस सर्व श्रेष्ठ पथ प्रदर्शक, प्रातः स्मरणीय महान तपस्वी, महान चमत्कारी स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज के चमत्कारों तथा उनके जीवन सम्बन्धी जानकारी एकत्रित करके एक पुस्तिका के रूप में जन जन

तक पहुंचाने का महाप्रयास करके परम उपकार किया है। महाराज श्री का जगराओं नगरी से विशेष सम्बन्ध रहा है। उन्हों ने अपने जीवन का अन्तिम भाग यहीं पर बिताया तथा उनका स्वर्गवास भी जगराओं में ही हुआ। उनकी पवित्र याद में जगराओं मे विभिन्न संस्थाएं बनी हुई हैं। जो भारतवर्ष में अपना विशेष स्थान रखती हैं। नगर में प्रवेश करते ही स्वामी रुप चन्द जैन स्मारक जिसे समाधि स्थल कहा जाता है एक तीर्थ स्थान बना हुआ है। डल्ला रोड पर स्थित स्वामी रुप चन्द जैन स्वर्ग आश्रम एक शान्ति स्थल बना हुआ है। जहाँ पर महाराज श्री जी के स्वर्गवास हो जाने के पश्चात उनका दाह संस्कार किया गया था।

शहर के मध्य में स्वामी श्री रुप चन्द जैन सीनीयर सैकन्डरी पब्लिक स्कूल जन जन को शिक्षित कर रहा है। जिसमें लगभग 2000 विद्यार्थी हैं। तथा P.S.E.B. से +2 तक मान्यता प्राप्त है। शहर के भीतरी भाग में महाराज श्री रुप चन्द जैन फ्री होम्योपैथिक हस्पताल जन जन की सेवा कर रहा है। पुराने उपाश्रय के स्थान पर नव निर्मित नया स्थानक जहां स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज विराजमान रहे श्रद्धालु बन्धुओं के हृदय पटल पर अपनी अमिट छाप लगा रहा है। पुराना स्थानक जिसे श्री रुप चन्द जैन हाल कहा जाता है उसे सतियों का स्थानक एवं श्री रुप चन्द जैन जंज घर आदि संस्थाएं भी सामाजिक उपकार में कार्यरत हैं। बहुत सी योजनाएं जिनमें ध्यान-केन्द्र, जनरल हस्पताल, वृद्ध आश्रम,,पक्षी विहार समाज के विचाधीन हैं। जगराओं पर पूज्य गुरुदेव का पावन आशीर्वाद बना हुआ है।

समस्त जगत की दिव्य विभूति, विश्व के देदीप्यमान सूर्य विश्व धर्म प्रेरक अहिंसा के मसीहा, तप और करुणा के सागर स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज भगवान महावीर स्वामी की श्रमण परम्परा के उज्जवल नक्षत्र हैं। महासाध्वी सुनीता जी महाराज के महाप्रयास का प्रतिफल यह पुस्तिका आपके हाथों में है। इस सफलता पर हम महासाध्वी जी को

कोटि-कोटि वन्दन करते हुए अन्नानन्त बधाई देते हैं। अन्त में विनम्रता पूर्वक एक ही बात कहना चाहता हूँ कि आप इस पावन गाथा को स्वयं पढ़ें-अन्य को सुनाएं। मेरा यह अटूट विश्वास है जो श्रद्धालु महाराज श्री के शरण में रहता है वह उसकी मनोकामना पूर्ण करते हैं, उसका मार्गदर्शन करके उसे सुख-शान्ति प्रदान करते हैं।

ऐसे मुनीश्वरों के चरणों मे कोटि-कोटि वन्दन।

महाराज के चरणों का सेवक

मपेन्द्र जैन

मन्त्री श्री रुप चन्द S.S. जैन बिरादरी (रजि)

जगराओं (लुधियाना) पंजाब

एक प्रभावशाली व्यक्तित्व श्री रुप चन्द जी महाराज

सन्त मिले परमेश्वर मिल गया

सन्त की महिमा वेद न जाने।

गुरु नानक देव जी की यह वाणी हमारे देश की उस परम्परा को बल देती है जिसमें सन्त को ईश्वर के बाद दूसरा स्थान दिया गया है। इस

धरती पर मनुष्यों के दुःखों एवं उलझनों को मिटाने के लिए सन्त भगवान का रूप में अवतारित होते हैं।भय, क्रोध ईर्ष्या आदि मानवीय कमजोरियों से ग्रसित मानव को मुक्ति का मार्ग दिखाना सन्तों का लक्ष्य होता है।

ऐसे ही घोर तपस्वी महानात्मा हमारे बीच अवतारित हुई जिन्हें स्वामी श्री रुप चन्द जी के नाम से जाना जाता है। उन्होंने अर्हत दर्शन के माध्यम से जैन धर्म की परम्परा को और अधिक सुदृढ़ किया। परम सिद्धि एवं मोक्ष को प्राप्त करने का सतत प्रयास करना ही जीवन है। जब भगवान महावीर स्वामी से पूछा गया कि संसार में आपने क्या देखा तो उनका उत्तर था-" कुछ पैदा हो रहा है कुछ नष्ट हो रहा है । लेकिन एक बिन्दु है जिसके चारों ओर सब कुछ घूम रहा है। ज्ञान हर समय पैदा होता है। अरिहन्त, आचार्य, साधु उनके जितने भी धर्मों के पर्याय संग्रह हुए हैं वे उन्हें नष्ट करने पर तुले हैं। नष्ट होने और पैदा होने के बीच सिद्ध अवस्था रूपी एक धूरी है जिसके चारों ओर सब कुछ घूम रहा है।"

कूएं से पानी निकलते रहट को आपने देखा होगा। पानी से भरे हुए छोटे डिब्बे उपर आते है सारा पानी उलीच कर चले जाते हैं। पानी उलीचने का क्रम निरन्तर जारी रहता है जहाँ पानी जा रहा है वह एक केन्द्र है जिसके दोनों तरफ पैदा होना और नष्ट होना घूम रहा है।

सन्तों की प्रकृति के इस रहस्य की पूर्ण समझ होती है. उन के मन में सुख दुःख अनुकूल प्रतिकूल जैसी बातें कोई महत्व नहीं रखती। वे जानते हैं कि यह सब स्थितियाँ जिस आधार पर खड़ी है ये हमारी आत्मा के आनन्द का विषय है। वह किसी आधार पर लिखा नहीं होता। स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज योगियों की श्रेणी में आते हैं जिन्हों ने इस तत्व को समझ लिया था। भगवान महावीर जिसकी नियति कहती है दार्शनिक अदृष्य कहते हैं, उसे ही श्री रुप चन्द जी महाराज के व्यक्तित्व में सहज देखा जा सकता है। जो अपने आप को देख लेते है, वही सन्त है, वही ज्ञानी है।

महाराज श्री रुप चन्द जी महाराज समाज सुधारक भी थे। उन्हों ने समाज की अनेकों कुरीतियों पर प्रहार किया। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण उनके विरोधी स्वयं ही उनके भक्त बन गये। आज भी उनका स्मरण करने मात्र से स्वयं साक्षात दर्शन देते हैं। भौतिक रूप से मैंने उनके दर्शन नहीं किये लौकिक दैविक रूप से दर्शन किये हैं, उनका दर्शन था, श्रद्धा को दृढ़ कर स्थिर करो। अहिंसा एव अनेकान्त में श्रद्धा पैदा करो,सत्य और जिज्ञासा पैदा करो। लोग ज्ञान के द्वारा सत्य को समझे, दर्शन के द्वारा स्थिर हो जाए, चरित्र के द्वारा धर्म बन्दनों को तोड़कर आनन्द को प्राप्त करें।

आज सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि हम स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज के बताए सिद्धांतों का अनुसरण करें। उस दिव्य पुरुष की समाधि स्थल जगराओं में है, धर्म एवं मान्यता के लोग श्रद्धा सुमन चढ़ाने आशीर्वाद प्राप्त करने और मार्ग दर्शन लेने पहुँचते हैं । वास्तव में सन्तों का प्रभाव ऐसा ही होता है जिससे संसार के लोगों का मोह भंग हो जाता है। उनमें मोह का लवलेश मात्र भी कहीं प्राप्त नहीं होता। ऐसी सरल विभूति थे श्री रुप चन्द जी महाराज जिनके चरण सरोजों में अन्नतान्त कोटिशः वन्दन नमन। स्वीकार करो मेरी वन्दना।
----------महासाध्वी सुनीता

मेरी अगाध श्रद्धा के केन्द्र
दिव्य विभूति स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज

एक चित्रकार अपनी कलाकृति बनाने में एकाग्रचित रहता है, घंटो काम करता रहता है तो यह भी एक प्रकार का तप है।, लेखक अपनी लेखनी द्वारा साहित्य सृजन करता है, यह भी एक तप है. स्वर्ण तप कर

शुद्ध से शुद्धतर हो जाता है। इसी प्रकार तप द्वारा साधक पवित्र से पवित्रतम हो जाता है।

ग्रीष्म ऋतु के चार माह तक अनवरत रूप से पृथ्वी सूर्य के प्रचण्ड ताप से तपती है। वर्षा ऋतु के आगमन पर पहली बौछार होती है तो मिट्टी में ऐसी मन मोहक सुगन्ध निकलती है कि उस सुगन्ध के प्रभाव से मयूर आनन्द विभोर होकर नृत्य करने लगते हैं। ऐसी सुगन्ध थी हमारे महान तपस्वी, महापुरुष स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज के पास। जिसने भी एक बार उस सुगन्ध का स्पर्श किया उसका सारा जीवन सुगन्धित बन गया। मुझे भी उस दिव्य सुगन्ध रूपी कृपा का आश्रय मिला जिससे मेरा यह साध्वी जीवन भी धन्य हो गया। जब से प्रवचन प्रभाविका कर्मयोगिनी महासाध्वी श्री सुनीता जी महाराज के चरणों में दीक्षा ग्रहण की है उनके मुखारबिन्द से प्रायः स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज के तपोमय जीवन की गाथा श्रवण करने को मिलती रही। उत्कण्ठा थी स्वयं अनुभव करने की चिराभिलाषी पूर्ण हुई जब 30 जून 1997 को महाराज श्री जी के समाधि स्थल जगरांवां मे पहुँचे। वहाँ का वातावरण मन को मोहक लगने लगा तथा दीर्घाकालीन तपोनुष्ठान के लिए मन में एक दृढ़ संकल्प पैदा हो गया और 2 जुलाई 1997 को संकल्प ले लिया कि आने वाले दीक्षात्सोव के पावन अवसर के पश्चात ही पारणा करूँगी। कैसे हुआ? किसने प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान की यह सब उस महान तपस्वी स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज की दिव्य प्रेरणा शक्ति के द्वारा ही तपोनुष्ठान सफल हो पाया। अब भी उनकी कृपा से ही सब कार्य सम्पन्न हो रहे हैं। जितनी उनकी आज्ञा होती है उससे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ती। जो कुछ भी आज हूँ गुरुदेव की कृपा का प्रतिफल है। भविष्य में भी ऐसी कृपा दृष्टि बनी रहेगी। यह मेरी अन्तरात्मा की आवज है। जब भी कोई पूछता है कि किस की प्रेरणा से आप तपारधन कर रही हो ? मेरी आत्मा से वही

आवाज मेरी अन्नतान्त आस्था के केन्द्र स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज की अपार कृपा से।

गुरुदेव के पावन चरण सरोजों में प्रतिक्षण प्रार्थना है कि आपकी ऐसी कृपा दृष्टि बनी रहे जिससे मेरा मन तप में लगा रहे। उत्तरोतर तपोमार्ग पर बढ़ती रहूँ। आप का स्मरण करती रहूँ 265 व्रतों का तप करना, मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकती थी। यह फिर अल्प दीक्षायु में तप करना कोई (साधारण बात नहीं) आसान काम नहीं था। सब आपकी ही कृपा का प्रतिफल से संभव हो पाया है।

आप मेरे प्रेरणा स्त्रोत हैं, आराध्य देव हैं। मैं अपने महानतपस्वी मुनिराज महापुरुष स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज के चरणों मे कोटिकोटि वन्दन, अभिनन्दन करती श्रद्धान्वित होकर श्रद्धा सुमन समर्पित करती हूँ।

साध्वी शुभ

हृदयोद्गार

वक्तुं गुणान गुण समुद्र शशांक कान्तान्
कस्ते क्षमः सुर गुरू प्रतिमोऽपिबुद्ध्या।।

हे गुण सागर चन्द्रमा के समान कमनीय आपके गुणों का वर्णन बृहस्पति के समान बुद्धि-वैभव सम्पन्न व्यक्ति भी नहीं कर सकता, फिर मुझ में तो इतना सामर्थ्य ही नहीं है।

जैन साहित्य इतना विशाल है कि इस की तुलना नहीं की जा सकती। पहले तो यह श्रुतज्ञान होता था, फिर जब श्रुतेन्द्रिय क्षीण होने लगी तो हमारे पूर्व आचार्य भगवन्तों ने इसे लिपी बद्ध किया और लम्बा समय होने के कारण हस्तलिखित भी अधिक सुरक्षित नहीं रहे। ऐसे अनेकों मुनिषियों का जीवन परिचय हमें नहीं मिलता । इसी तरह महान तपस्वी वचनसिद्ध पुरुष श्री रूप चन्द जी महाराज का जीवन परिचय भी अनउपल्बध था। प्रवचन प्रभाविका साध्वी श्री सुनीता जी महाराज ने अपनी अनथक प्रयासों से कुछ सामग्री इकट्ठी कर के उसे एक पुस्तिका का रूप दिया। मेरा उनसे परिचय तो बहुत पुराना है परन्तु मैं कुछ वेदनीय कर्मों से गुरु दर्शनों से वंचित रहता हूँ। अचानक बच्चों का समाधि स्थल जाने का विचार बना और मुझ से पूछा तो मैं भी तैयार हो गया। उसके पश्चात साध्वी जी महाराज के पावन दर्शन करने का सौभाग्य मिला, तो मैंने स्वामी श्री रुप चन्द जी महाराज के जीवन परिचय के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट की तो उन्हों ने पुस्तिका थमा दी और कहा- कि अब यह समाप्त हो चुकीं हैं। मैं ने कहा- आपकी आज्ञा हो तो मैं इसका नया संस्करण लैपटॉप पर करके ई-बुक लाईब्रेरी (किंडल) पर डाल दूँ, उन्होंने सहर्ष अनुमति प्रदान की, मैं उनका आभार व्यक्त करता हूँ।

जैन सन्त चमत्कारी (जादूगर) नहीं होते, उनकी संयम, साधना ही कुछ ऐसी घटना कर देती हैं जिसे हम चमत्कार मानते हैं। आचार्य मानतुंग को बेडियों से झकड़कर 48 कोठड़ियों में बन्द कर ताले लगा दिए गये, शान्तमुद्रा में आदिनाथ का स्मरण करते बेड़िया टूट गई, किवाड़ खुल गये। ऐसे ही आचार्य सिद्धसेन ने उज्जैन के महाकाल मन्दिर में प्रवेश किया, तो पुजारियों ने धक्के दिए पिटाई की परन्तु उन को कुछ लग ही नहीं रहा था

उन्होंने प्रभु पार्श्वनाथ का स्मरण करते कल्याण मन्दिर की रचना की, कि शिवलिंग फटकर भागवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापित हो गई।

ऐसी ही एक घटना मुझे याद आ गई, कि एक बार पटियाला रियास्त में जैन सन्त इकत्रित हो गये, उस समय वहाँ जैन स्थानक नहीं था छते में किसी के मकान में ठहरे हुए थे, महारज श्री जयन्तिदास जी ने कुछ औषध मलाई के साथ खाने को वैद्य ने कहा था, सायं जब आहार कर लिया तो कसेरा चौंक में एक हलवाई की दूकान जो गर्म दूध बेचता था उसके पास कुछ मलाई की याचना की, उसने एक ब़डे बर्तन में जो इकट्ठी की हुई थी सारी उड़ेल दी, महाराज श्री जयन्तिदास जी ने कहा-अच्छा जिस भाव से दी है, उसी भाव से तुम फलो-फूलो, आज वह परिवार अरबपति है अनेकों मिलों के मालिक हैं उसके परिवार ने इस समय जो जैन स्थानक है उन्हीं का दान दिया हुआ है। स्थानक में आकर महाराज श्री जी ने सारी मिलाई खा ली और आचार्य श्री रती राम जी से कहा- 90 दिन का पच्खान करा दो, वहीं पर महान तपस्वी श्री रुपचन्द जी महाराज ने कहा- महाराज 87 दिन का कल्प आएगा, जो सत्य सिद्ध हुआ। जीवनकाल में अनेकों उपकार किये होगें, कोई इतिहास उपलब्ध नहीं, फिर भी आज उनका नाम स्मरण करने से कार्य सिद्ध हो जाते है। तपसूर्या साध्वी श्री शुभ जी महाराज प्रत्येक वर्ष लम्बी तपस्या रुपगुरु का ही आशीर्वाद है। महान तपस्वियों को मेरा कोटि-कोटि वन्दन नमन।

14.10.2020 स्वतन्त्र जैन जलन्धर,लुधियाना

भूतपूर्व महामन्त्री एस. एस. जैन सभा जालन्धर

एवं संस्थापक महामन्त्री जैन कॉलोनी उपाश्रय सोसाईटी जालन्धर

श्री रुप चन्द जी महाराज का कालजयी व्यक्तित्व

भारत में पंजाब प्रान्त का अपना ही इतिहास है। यहाँ के निवासी परम-वीर कद काठी से मज़बूत हैं। पंजाब प्रान्त हर प्रकार से ऋद्धि-

समृद्धि से परिपूर्ण है। यहाँ के खान-पान, रहन-सहन में समृद्धता झलकती है। यहाँ के रीति-रिवाज खासकर भंगड़ा बहुत ही प्रसिद्ध है और मन को अल्हाद से भरने वाला है। यहाँ के नागरिक धार्मिक हैं। पाँच नदी होने के कारण इस को पंजाब के नाम से पुकारा जाता है।

पंजाब प्रान्त की एक बहुत प्रसिद्ध रियास्त है जिसको लोग मालेरकोटला के नाम से पुकारते है। सर्वश्रेष्ठ पथ प्रदर्शक जैन ऋषि, कुलभूषण पूज्य श्री स्वामी रुप चन्द जी महाराज के पिता लाला अमोलकराय जी रियास्त मालेरकोटला के ही निवासी थे और ओसवाल जाति के भाबू गोत्र थे। अपने सद् व्यवहार से चहूँ ओर इनका नाम था। प्रचीन काल से ही यह परिवार अटल प्रताप और श्रेष्ठता के कारण प्रख्यात था। आप मालेरकोटला के सुप्रसिद्ध व्यापारी थे। बहुत बड़ा कारोबार था। भाग्य अनुकूल होने से वाणिज्य व्यापार में निरन्तर अभिवृद्धि हो रही थी। आपका विवाह लुधियाना निवासी ओसवाल जाति के रत्न माननीय लाला छज्जूराम जी के पुत्र श्री गट्टूमल जी की सपुत्री श्री मति मंगला देवी के साथ हुआ जो बहुत ही धर्मनिष्ठ, पतिव्रता और सुशीला थी। सात्विकता, मानव सेवा व लोक सेवा आदि उनके विशेष गुण थे। वह शांत, सौम्य और क्षमा की मूर्ति थी। आप बड़ी साच्चरित्रा, सरल-हृदय और गृहस्थ कार्यों में पूर्णतया दक्ष थी। नियमित धार्मिक जीवन चर्या का निर्वाह आपका एकमात्र आदर्श था।

सर्व श्रेष्ठ पथ प्रदर्शक, अटल प्रतीज्ञा, संयम व्रतधारी सम्यग् दर्शी त्यागमूर्ति श्री रुप चन्द जी महाराज का जन्म 1868 में माघ कृष्ण पक्ष की दशमी के दिन हुआ। वह दिव्य मनमोहक मूर्ति चन्द्रमा तुल्य प्रकाशमान थी। आत्मिक पवित्रता, हृदय की स्वच्छता, मन-वचन कर्म की सत्यता और निर्मल आत्म दृष्टि, धर्म परायण जनता की आप पतवार बने। आपका जन्म अपने ननिहाल में अपने नाना लाला गट्टूमल जी के घर लुधियाना में हुआ। एक ऐसी पुण्य ज्योति का आविभार्व हुआ जिसके

उज्जवल प्रकाश की दैदीप्यमान पवित्र किरणें चहुं ओर प्रसारित हुईं और वह संसार में भटकने वाले यात्रियों के लिए प्रकाश स्तम्भ बन गई। वह दिव्य मनमोहक मूर्ति सूर्य समान प्रकाशमान शीतल स्वरूप यथा नाम तथा गुण श्री रुप चन्द जी थे।

मालेर कोटला का गौरव

वैशाख सम्वत् 1869 विक्रमी में होनहार बालक अपनी माता के साथ मालेरकोटला में लाए गये।

इस प्रचीन नगरी को ऐसे महापुरुषों की जन्म भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिन्हों ने धार्मिक और आत्मवेता संसार में अपनी विद्वता और आत्मोन्नति की धूम मचाकर युगान्तर उपस्थित किये हैं।

व्याख्यान –वाचस्पति जैन रत्न श्री स्वामी परमानन्द जी का पवित्र जन्म स्थान और श्री बिहारी लाल जी महाराज की जन्म भूमि होने का सौभाग्य इसी मालेरकोटला को प्राप्त है। पूज्यपाद जैन रत्न श्री स्वामी रुप चन्द जी महाराज का पालन-पोषण भी यहीं पर हुआ था। श्री स्वामी वृषभान जी का जन्म स्थान भी यही है।

इन पवित्रात्माओं और स्वनाम-धन्य महापुरुष के प्रातः स्मरणीय कथा और जगद-उद्धारक पुण्य कृत्यों के साथ-साथ मालेरकोटला का नाम भी अमर रहेगा।

भविष्यवाणी

दैवयोग से इसी वर्ष जैनाचार्य पूज्य श्री इन्द्रचन्द्र जी महाराज तपेवाले स्थानक में विराजमान थे। धर्म-प्रेम तथा भक्तिभाव से प्रेरित होकर लाला आमोलकराय जी और श्री मंगला देवी जी बालक रुप चन्द को लेकर दर्शनार्थ स्थानक में आए। सविनय वन्दना के पश्चात् महाराज श्री जी के दर्शन किये। आचार्य श्री जी की दृष्टि जब बालक पर पड़ी तो उसके उज्जवल भविष्य की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा-

यह बालक तेजस्वी और धार्मात्मा होगा। इसका भविष्य बहुत उज्जवल है और इसकी कीर्ति चन्द्र-किरणें के समान चारों ओर फैलेंगी और यह पूर्ण यौवन में संयम धारण कर अपने संयम का पराक्रम प्रदर्शित करेगा।

माता-पिता ने आचार्य श्री की भविष्यवाणी सुनी तो बालक का उज्जवल भविष्य जानकर आनन्द-निमग्न होकर घर लौटे परन्तु बालक के त्यागी, वैरागी और संयमी भविष्य जानकर कुछ देर के लिए उन्हें गहरे सोच-विचार के सागर में निमग्न कर दिया। इकलौते पुत्र के संयमी बन जाने की कल्पना से उनका मन विचलित एवं विक्षुब्ध भी हो उठता था।

अनूठा चमत्कार

आचार्य शिरोमणि पूज्य श्री रतिराम जी महाराज जैन समाज के विख्यात वक्ता और सिद्ध-हस्त लेखक थे। आप आत्मानुभाव और ज्ञान के कोष थे। आत्म-संयम इन्द्रिय निग्रह और समत्व की साधना के आदर्श द्वारा उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेकों अद्‌भुत चमत्कार प्रदर्शित किये।

सम्वत् 1897 विक्रमी में मालेरकोटला में घटित होने वाली निम्नलिखित चमत्कारी घटना विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

कार्तिक शुक्ला त्रियोदशी को आचार्य श्री जी के शरीर को कष्ट हुआ। कर्मगति की यह यातना शरीरक दुःख का कारण तो थी ही, किन्तु जनता को भी इसने विस्मित कर दिया। उनके शरीर से इतनी दुर्गन्ध आती थी कि सेवा करना तो क्या समीप बैठना भी कठिन प्रतीत होने लगा। शारीरक परमाणु अपने स्वभाव के अनुसार गलने-सड़ने और नष्ट होने लगे। सर्वसाधारण जनता में आपकी इस चिन्ताजनक अवस्था की घृणास्पद चर्चा होने लगी। आपकी महानता और श्रेष्ठतम तपस्वी व्यक्तित्व के दृष्टिकोण से इस प्रकार वेदनायुक्त दुस्साह क्लेश लोगों के लिए अचम्भे में डालने वाली एक पहेली बन गई। कर्म गति और परमाणु का स्वभाव दोनों साक्षात् रूप से दृष्टिगोचर होने लगे, परन्तु अनभिज्ञ विरोधियों ने

जैन धर्म की निन्दा करनी आरम्भ कर दी और यह बात इतनी बढ़ी कि कुछ देर के लिए जैन धर्मावलम्बियों की भी श्रद्धा डांवाडोल होने लगी।

आत्म-विश्वासी और कर्म-गति के ज्ञाता महार्षि ने यह अनुभव करते ही आत्म-सिद्धि का स्पष्ट रूप से परिचय दिया। विकृति भाव को धारण किये हुए शरीर के परमाणु और ही रंग मे परिवर्तित हो गये। दुर्गन्ध-सुगन्ध मे बदल गई। चारों ओर वातावरण महकने लगा। आपका यह चमत्कार देख कर दम्भानुयायी द्वेषी दल स्वयंमेव धर्मपरायण बन गया और धर्म-प्रेमी सज्जनों तथा श्रद्धालुओं के लिए । यह समयानुकूल चमत्कार आनन्द प्रदायक तथा श्रद्धा-वर्धक सिद्ध हुआ।

कोटला के सूबा खान साहिब बहादुर इसी मार्ग से निकले और जैन उपाश्रय से आनेवाली सुगन्ध ने आपको आकृष्ट किया। वे विस्मित होकर पूछने लगे कि यह सुगन्ध कहाँ से आ रही है? उपस्थित सज्जनों ने जब उपरोक्त चमत्कार का वर्णन किया तो खान साहिब अत्यन्त प्रभावित हुए और दर्शन लाभ के लिए स्थानक में पधारे। दर्शन किया और सूचित घटना को यथावत पाते ही श्रद्धा से उनका मस्तक मुनि चरणों में झुक गया। उन्होंने मुनिराज के उपदेशों से प्रेरित होकर अपनी राजधानी में सब प्रकार की जीव-हिंसा पर रोक लगा दी। इस अद्‌भुत घटना की चर्चा चारों ओर फैल गई और जैन धर्म अधिक लोकप्रिय हो गया।

बाल्यकाल और विद्याभ्यास

आपके बचपन के सम्बन्ध में बहुत ऐसी घटनाएँ है जो प्रकाश में नहीं आ सकी हों,कारण कि इनके इतिहासिक महत्व के सहयोगी लेखक गण समय पर न समझ सके.। गद्य और पद्य के थोड़े से पृष्ट हमें छानबीन और अन्वेषण के पश्चात् एक प्राचीन पुस्तकालय से प्राप्त हुए हैं। उनसे पता चलता है कि आपका बाल्यकाल बड़ा गम्भीर और प्रशान्त अवस्था में बीता है। सांसारिक सुख-सम्पति और सन्तोष के साथ आपकी विद्वता तथा मानसिक तेज का उज्जवल, लाभदायक और सद्भाव से परिपूर्ण होना

स्वाभाविक था। धर्म-परायणा माता-पिता श्री मंगला देवी की देख-रेख में पालित होने वाले रुप चन्द जी का शान्त एवं गम्भीर बनना अनिवार्य था। आपका बाल्यकाल माता की प्रार्थना, पिता का शुभाशीर्वाद, सम्बन्धियों का प्रेमानुराग और मुनिवर्यों का सत्संग में निरन्तर विकसित हो रहा था।

यहाँ यह बात बताना भी आवश्यक है कि सूक्ष्म विवेक और सरल स्वभाव आपके जीवन का अंग वन चुके थे। आप सन्तों के समक्ष अपनी माधुर्य भरी तोतली जिव्हा से संदिग्ध जटिल आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान सुझाने के लिए प्रबल अनुरोध किया करते थे और जब तक सन्तुष्ट न होते, पूछते ही जाते थे। तत्व ज्ञान प्राप्त करने में आपकी रुचि थी। इसी कारण आपकी विद्वत्ता और योग्यता सम-सामायिक और सहयोगी विद्वानों तथा पण्डितों के बीच आदरमान और श्रद्धा का पात्र बन गई।

सात वर्ष की आयु में आपको स्थानीय पाठशाला में विद्या-अभ्यास के लिए भेजा गया। थोड़े ही समय में आपने हिन्दी में लिखने-पढ़ने का अभ्यास कर लिया। सांसारिक विद्या के साथ-साथ धार्मिक विद्या का बोध माता जी कराती ही रही। स्वाध्याय की मनोवृत्ति भी विद्याभ्यास में सहयोगी और सहायक हुई। गणित विद्या को आपने इतना शीघ्र समझ लिया कि शिक्षक-गण आपको असाधरण प्रतिभा से चकित रह गये।

गुरुदेव श्री नन्द लाल जी महाराज

पुज्य श्री रतीराम जी महाराज की सन्त परम्परा के दिव्य रत्न कविवर व्याख्यान-वाचस्पति विख्यात सन्त श्री पूज्यपाज स्वामी नन्दलाल जी महाराज काश्मीरी पण्डित थे। सम्वत् 1861 में 18 वर्ष की आयु में रियासत किशनगढ़ में वे दीक्षित हुए थे। आप वेदों एवं पुराणों के बहुत बड़े ज्ञाता थे। जैन-सूत्रों की शिक्षा और उनके स्वाध्याय ने सोने में सुगन्ध का काम किया। आप ज्योतिष-शास्त्र की, गणित-फलित विषयक दोनों के विद्याओं मे निपुण और शास्त्र-विजेयता महारथी थे। आप फारसी के भी

अच्छे विद्वान थे। आपकी भव्य मूर्ति जितनी मनोहर और ओजस्वी थी, उतने ही आपके उपदेश भी तत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक और प्रभावशाली होते थे। आपकी अद्वितीय लेखनशैली द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनेकों चिर-स्थायी ग्रन्थों का निर्माण किया। जिनमें से-

(1) अर्जुन माली का चौढ़ालिया सम्वत 1870 में

(2) रूक्मणि रास, छन्द संख्या 325 सम्वत् 1876 होशियारपुर

(3) पारस पुराण, छन्द संख्या 325 सम्वत् 1870 नारोवाल में

(4) बावनी छन्द संख्या 55 सम्वत् 1896 सुनाम नगर में

(5) गौतम पृच्छा छन्द संख्या 215 सम्वत् 1898 सुनाम नगर में

(6) लब्धि प्रकाश छन्द संख्या 1445 सम्वते 1903 कपूरथला में

(7) ज्ञान-प्रकाश छन्द संख्या लगभग 800 सम्वत् 1906 कपूरथला में

(8) समगत धर्म

(9) रामायण रास

(10) मिथ्यातकंदली

(11) अगड़ बम्ब की कथा इत्यादि अनेकों पुस्तकें आपकी सिद्धहस्त लेखनी द्वारा प्रकाशित हुई। इनके अतिरिक्त अगणित कविताएं आपकी साहित्य सम्बन्धी

पूज्य श्री जी के रचे हुए सब ग्रन्थों का विवरण नहीं लिखा जा सकता, क्योंकि कपूरथला शास्त्रभंडार में से अनेकों ग्रन्थ रत्न निकाल लिए गये थे।

सर्वमान्य योग्यता की साक्षात प्रमाण है और सहस्त्रों सहृदय नर-नारियों को धर्म और सेवा का उपदेश देकर आत्म-सन्तोष तथा शान्ति प्रदान की।

श्री रुपचन्द जी ने नियमित प्रारम्भिक शिक्षा आप से ही प्राप्त की। गुरुदेव जी के अनुकरणीय सदाचार का आज्ञाकारी विद्यार्थी के सरल हृदय

पर अत्याधिक प्रभाव अंकित हुआ और आगामी जीवन में इनके प्रताप से उनका जीवन पूर्ण आनान्दमय और आत्मा पवित्र होती गई।

सम्वत् 1880 में आपकी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त हुई। सामायिक, प्रतिक्रमण, थोकड़े कण्ठस्त हो गये।

सम्वत् 1881 में आप अपने पिता के व्यापार में सहयोग देने लगे। दो वर्षों मे ही आपने व्यापारिक रहस्य और काम काज के रंग-ढ़ंग की पूरी जानकारी प्राप्त कर ली।

अटल भीष्म प्रतिज्ञा

सम्वत् 1883 में लोकमान्य जैन रत्न स्वामी श्री रामलाल जी महाराज मालेरकोटला में पधारे. आपके उपदेश तथा व्याख्यान विद्वता,क्रियासम्पन्नता,नियमानुकूल, संयम की भावनाओं से परिपूर्ण,मर्मस्पर्शी तथा प्रभावशाली थे। वे जिस वाद-विवाद अथवा समस्या का निर्णय करने लगते उसको श्रोताओं के हृदयपटल पर अंकित कर देते थे। प्रभावशील व्याख्यान की कला में आप अपनी समता में रखते थे। एक दिन "**वनस्पति काय**" के महत्वपूर्ण विषय पर व्याख्यान देते हुए आप ने कहाः-

"**वनस्पति**" में भी जीवन है, प्रत्येक जीव-जन्तु की तरह इसमें भी चेतना है। यह भी सुख-दुःख का अनुभव करती हैं, इसले **वनस्पति काय** की रक्षा करना प्रत्येक प्राणी का परम कर्त्तव्य है।

श्रोताओं ने प्रभावित होकर तत्काल प्रतीज्ञा कि की वह आज वनस्पति नहीं खायेंगे। इस प्रतीज्ञा करने वालों मे श्री रुप चन्द तथा उन के पिता जी भी उपस्थित थे। व्याख्यान समाप्त होने पर श्रोतागण अपने-अपने व्यवसाय में निमग्न हो गये। त्याग मूर्ति श्री रुप चन्द जी भी अपनी दुकान पर चले गये।

उन दिनों काबूल से कुछ अफगान व्यापारी मलेरकोटला में आए हुए थे। लाला अमोलक राय की दुकान पर प्रायः वणिज्य व्यापार के

सम्बन्ध में उनका आना-जाना था। उन्होंने कतिपय फल लाला जी को भेंट किये। रुप चन्द भी समीप ही थे, उन को भी दो सेब दे दिये। अफगान तो यह कह कर सुनाम से लौट कर व्यापारिक लेन-देन करेंगे। प्रस्थान के प्रार्थी हुए और लाला जी ने मिठाई भेंट करके उन्हें यथोचित सत्कार से विदा किया। तत्पश्चात् लाला जी ने रुप चन्द को चाकू दे कर कहा-" लो बेटा सेव खाओ....." यह सुनते ही रुपचन्द जी विस्मित हुए कि सत्यवादी अटल-प्रतिज्ञा व्यापारी पिता जी यह क्या कह रहे हैं? आपने तुरन्त निवेदन किया-"पिता जी ! आपने कल ही तो वनस्पति काय के त्याग का नियम लिया था, फल खाने के लिए आप किस तरह कह रहे हैं? " पिता जी ने समझाते हुए कहा-"बेटा! वह त्याग तो केवल एक दिन का था।' भावी महापुरुष रुपचन्द ने शंका समाधान के आशय से प्रश्न किया- **"पिता जी! जो वस्तु आज बुरी है, क्या वह कल अच्छी हो सकती है। जो वस्तु बुरी है वह सदा ही बुरी रहेगी, इसलिए बुराई का परित्याग करके पुनः उसको ग्रहण करना किसी प्रकार भी उचित नहीं। में तो जीवन पर्यन्त वनस्पति काय की रक्षा करूँगा। आत्म संयम और त्याग की इतनी दृढ़ता देख कर पिता जी बड़े चिन्तित हुए और उन्हें इस कठिनाई का एकमात्र उपाय यही सूझा कि रुपचन्द को गृहस्थ आश्रम के प्रेम-पाश में डाल कर उसका संसार और परिवार से स्थायी सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाये।"**

सम्वत् 1885 में त्यागमूर्ति महर्षि श्री रामलाल जी महाराज लुधियाना पधारे। वणिज्य-व्यापार के सम्बन्ध में रुपचन्द भी लुधियाना आए हुए थे। महात्मा जी ने अपने ज्ञानोपदेश और वक्तृताओं के कारण जगत-विख्यात हो चुके थे। व्यवाहारिक धार्मिक जीवन ने आपको अधिक लोकप्रिय बना दिया था। आपकी विद्वत्ता का लोहा सभी मानते थे। अपके व्यक्तित्व में अद्वितीय आकर्षण शक्ति थी। आत्म, कर्म, ईश्वर और जगत

जैसे उलझे हुए प्रश्नों और कठिन शास्त्रीय समस्याओ को भी आप ने अनुभव और दक्षता के स्पर्श मात्र से अत्यन्त सरल, साधारण और दैनिक जीवन की बात बना देते थे। इनकी सरलता मे सात्विक आनन्द की ऐसी लहर थी जिसके कारण जिज्ञासुओं के हृदय में अनन्त उत्सुकता जागृत हो जाती थी। आपका प्रत्येक वाक्य एक निबन्ध के समान महत्वपूर्ण होता था और गम्भीर विषय की एक-एक वाक्य में पूर्ण रूप से व्याख्या कर देते थे। आपकी इस विद्वत्ता ने जनता पर अपना विशेष प्रभाव जमाया । निसन्देह आप अनेक भूले-भटके मनुष्यों के लिए सच्चे पथ प्रदर्शक थे। श्री रुपचन्द जी आपके उपदेशों से बहुत प्रभावित हुए। उनकी प्रकृति का झुकाव तत्त्वविवेचन और धर्मनिष्ठा की ओर था ही, महात्मा के जीवन में सात्विक ज्ञान और धर्म की सच्ची झलक दृष्टिगोचर हुई तो उन्होंने भी उनके अनुगामी होकर स्वयं भी तपोमय सत्य मार्ग पर चलने का निश्चय कर लिया और मन ही मन में उस पुण्य दिवस की कल्पना करने लगे कि उनका निश्चय क्रियात्मक रूप धारण करेगा।

आत्मोन्नति की ओर बढ़ते कदम

हृदय की पवित्रता का इससे अधिक प्रमाण और क्या हो सकता है कि श्री रुपचन्द जी महात्माओं से उपदेश सुनते,उन्हें अपनी दिनचर्या में चरितार्थ करके आत्मोन्नति में एक पग और आगे बढ़ जाते। सांसारिक काम-धन्धे में जो थोड़ा-बहुत अनुराग था उसे छोड़ने लगे। सत्य की जिज्ञासा और भी प्रबल होने लगी। स्वाभाविक सरलता और विरोचित अभय जीवन व्यतीत करते उन्हें अनुभव हुआ कि सांसारिक यश और कीर्ति प्राप्त करने के अतिरिक्त मनुष्य का कुछ और लक्ष्य भी है। यह प्रसिद्धि और लोकप्रियता केवल दिखावा मात्र है। अतः हमें जीवन का वास्तविक लक्ष्य की उपलब्धि के लिऱ प्रयत्नशील हो जाना चाहिए। आय व्यय, पठन-पाठन, कलाकौशल,विज्ञान व्यवसाय तथा श्रम जीविका से धनोपार्जन की दौड़-धूप और सुख-दुःख केवल जीवन का झंझट है। मृत्यु के

बाद यह सब निरर्थक सिद्ध होंगे। मृत्यु के समय इन में से कोई सहायक नहीं हो सकता। अतः हमें भविष्य के नव-जीवन को सफल बनाने के लिए उस अगामी जीवन यात्रा के लिए पुण्य-सामग्री एकत्रित करनी चाहिए, अर्थात् नियमित जीवन के सब धर्म-क्षेत्र में प्रवेश करके संयमी जीवन बनाना चाहिए।

लोकहित के मार्ग में बाधाएं

सम्वत् 1888 में देश की निर्धनता और मनुष्य जीवन की अनगणित आवश्यकताओं तथा धन-धाम के कलह-क्लेश, धार्मिक ज्योति से विमुख जनसाधारण के संकुठित व्यवहार, परस्पर साम्प्रदायिक द्वेष. मनोमालिन्य, मित्रों के स्वेच्छाचार और विद्वानों की आत्म श्लाघा को देखकर उनके हृदय में सेवा-भाव और धर्मभाव-जन्य प्रेम की अत्यन्त प्रबल तरंगें उत्पन्न हुई देश एवं समाज की उन्नति के लिए चिन्तित रहने लगे। अपने समय में सबसे पहला अत्याचार दुराचार तथा दासता की मनोवृद्धि के विरुद्ध आपने ही भारी अन्दोलन आरम्भ किया। निज सम्बन्धियों में आपके नवीन सुधारक विचारों के प्रति भी बड़े ले दे हुई। प्राचीनता के उपासक और प्रत्येक नयी बात को सन्देहस्पद बनाने वाले लोग आपके कट्टर विरोधी बन गये। पग-पग पर सुधार और लोकहित के मार्ग में बाधाएं डालने लगे। अपने इस उत्साह को अटल और यथावत प्रबल रखने के लिए श्री रुपचन्द जी ने अपने त्यागी गुरुदेव की शरण ली।

अन्याय के विरुद्ध संग्राम

श्री स्वामी रामलाल जी महाराज के उपदेशों में श्री रुपचन्द को बहुत श्रद्धा थी। उन्हों की प्रेरणा से वह अनन्त उत्साह व अखंड ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर कार्य-क्षोत्र में कूद पड़े। आपको सात्विक उद्देश्य और युक्तियुक्त विचारों का जितना विरोध हुआ उतना ही उनका उत्साह में अटल

विश्वास दृढ़ होता गया। महर्षि रामलाल जी के उपदेश आपके इस क्रान्तिकारी जीवन में अमृत वर्षा के समान प्रेरणाप्रद सिद्ध हुए। नवीन विचारों के विरोधी मठाधीशों ने उनके उपर झूठे अभियोग लगाए, मन घड़न्त कृत्रिम समाचार फैलाए और बिरादरी से बहिष्कार की धमकियों के साथ लगे हाथ यह उपहास-प्रद विज्ञप्ति भी प्रकाशित कर दी कि तुरन्त क्षमा प्रार्थी होने पर उन्हें क्षमा भी किया जा सकता है।

परन्तु श्री रुपचन्दलजी जब दुकानदार नहीं थे, जो उनकी विडम्बना और धमकियों से भयभीत हो जाते, अथवा धमकियों से झुक जाते। गुरु जी की कृपा से इनमें महानशक्ति, सद्व्वहार, उदारता तथा अत्याचारियों को क्षमा करने की क्षमता आ चुकी थी। सत्य की रक्षा के लिए बड़े-बड़े त्याग भी उनके लिए सामान्य सी बात थी। वास्तव में सत्य और अन्याय के विरुद्ध घोर-संग्राम करना भी अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझते थे।

वैराग्य की डगर पर

आचार्य श्री नन्दलाल जी महाराज सम्वत् 1888 के अन्त में पुनः मालेरकोटला आए। इस समय तक श्री रुपचन्द जी का अन्तकरण वैराग्य से परिपूर्ण हो चुका था। उन्होंने गुरुचरणों में उपस्थित होकर प्रार्थना की-" महाराज! आहार लाने के लिए सेवक के घर पधारिये।' महाराज जी ने अनुमति देते हुए कहा-' अच्छा सहयोगी मुनि जंगल से जावें तो चलने का अवसर देखा जाएगा।' आपने पुनः पूछा-' आप क्यों नहीं चलते, हमारा घर निकट ही तो है।'

महाराज श्री जी ने कहा-' अत्यन्त आवश्यकता के बिना एक ब्रह्मचारी जैन साधु अकेले गृहस्थियों के घर जाना शोभा नहीं देता।'

महाराज श्री जी ने **ब्रह्मचर्य व्रत** का अत्यन्त सह-गर्भित व्याख्या की। विषय मनोहर था और व्याख्या की शैली रोचक थी। श्री रुपचन्द के अन्तःकरण पर **ब्रह्मचर्य** का महत्त्व अंकित हो गया। बालब्रह्मचारी गुरु के समक्ष, आपने **आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन** की भीष्म प्रतीज्ञा कर ली और इस व्रत को सदैव निभाने के लिए दुग्ध और रात्रि भोजन का परित्याग कर दिया।

जब यह समाचार माता-पिता को मिला तो उन्हें चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि रुपचन्द के साधु बन जाने से घर का द्वार ही बन्द हो जाएगा। अतः चिन्ताग्रस्त माता-पिता को इस अपति से बचने का एकमात्र उपाय सूझा- कि इसका तुरन्त विवाह कर दिया जाये। वे अपनी योजना को कार्यन्वित करने की धुन में लग गये।

ब्रह्मचर्य की विजय

सम्वत् 1890 में माता पिता ने विवाहोत्सव रचाने का निश्चय किया। एक दिन इस शुभ संकल्प का समाचार माता-पिता ने आपको दिया। वस्तुतः श्री रुपचन्द जी के लिए यह बहुत भारी उलझन थी। उन्होंने सोचा कि ब्रह्मचारी व्रत में विवाह के बंधन में कैसे बंध कर स्वीकार कर सकता है? आज्ञाकारी पुत्र के लिए बड़े,बूढ़ों की आज्ञा का पालन करने के लिए निज कृत्तव्य समझता था। इन दो विरोधी विचारों ने आपको उलझन में डाल दिया। बड़े देर तक दत्तचित्त होकर इस समस्या का प्रयास करते रहे। अटल ब्रह्मचर्य प्रतीज्ञा और माता-पिता की आज्ञा के पालन में किस का परित्याग करें और किस को अपनाएँ ? अन्त में **ब्रह्मतर्य** की विजय हुई और उनके मन में साधु बन जाने की प्रबल उत्कण्ठा उत्पन्न होने लगी। प्रत्येक पल इसी धुन में बीतने लगा। प्रतिक्रमण सीखा तो माता-पिता का सन्देह और भी अधिक हो गया। इधर माता-पिता ने विवाह देने की ठानी हुई थी।

पुत्र और पुत्रवधु के कपड़े लत्ते का चुनाव और आरम्भिक तैयारियाँ धूम-धाम से हो रही थी इधर पुत्र को शीघ्रातिशीघ्र साधु बन जाने का दृढ़ निश्चय होने लगा। अन्तस् का विवेक-भूमि मे अद्भुत खींचातानी और विरोधी प्रयत्नों का जमघट हो गया।

अटल-प्रतीज्ञा, संयम-व्रतधारी,सम्यग्दर्शी त्यागमूर्ति श्री रुपचन्द जी प्रातः-सायं धर्म ध्यान में लीन रहने लगे। सामायिक, प्रतिक्रमण, शास्त्राध्ययन और आत्म-चिंतन से उन्हें तनिक भी अवकाश न मिलता। दिन में केवल एक बार भोजन करके शेष समस्त समय आध्यात्मिक विषयों के श्रवण, मनन, निदिध्यासन करते हुए मूल तत्वार्थ को कण्ठस्थ करने में व्यतीत थे। धर्म-प्रेमी माता-पिता जब इस प्रकार संसार से उदासीन और समाधिस्थ देखते तो चिन्ता में डूब जाते। आचार्य श्री रतीराम जी महाराज की भविष्यवाणी का स्मरण करके जब वे भविष्य की कल्पना करते तो उनके नेत्रों के सन्मुख पुत्र के साधु-जीवन का चित्र अंकित होकर उन्हें विह्वल कर देता और माता-पिता स्नेह पूरित प्रेम में आकर करुणा भरे प्यार से कहते-

" रुपा! गृहस्थियों के लिए इतना त्याग अथवा वैराग्य अच्छा नहीं होता। इस प्रकार सांसारिक धन्धे कभी नहीं चल सकते।"

दूसरी ओर गुरुदेव और धर्म के प्रति पुत्र के निर्मल-अनन्य अगाद प्रेम को देखते ही माता-पिता के नेत्रों में आलौकिक दिव्य ज्योति सी आ जाती थी। लेकिन दूसरी ओर पुत्र का वैराग्य धारण और उसके वियोग की अनुभूति माता-पिता के हृदय को पीड़ा से भर देती थी। कभी अनुरोध करते, कभी स्वयं ही क्षमा कर देते। इस प्रकार दोनों ओर प्रतिद्वन्दी विचारों के भयंकर संघर्ष हो रहा था। एक दिन मां ने पुत्र को समझाते हुए उसके समक्ष उसे विवाहित देखने की इच्छा

प्रकट की तो वे बोले-**"मां! मैं अजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतीज्ञा कर चुका हूँ, अतः विवाह के लिए क्षमा चाहता हूँ, जान बूझकर पुत्र को भाड़ में क्यों झोंकना चाहते हो ?"**

मां ने बहुत समझाया, पिता ने अनेक प्रलोभन दिये, परन्तु कमल के पत्र पर पानीकी बूँद कहाँ ठहर सकती थी ? भीष्म प्रतिज्ञा को कौन भंग कर सकता था ? हिमालय की दृढ़ता को कौन चुनौति दे सकता था ?

साधना का राज्यमार्ग

लाला अमोलक राय जी के इस इकलौती सन्तान और एकमात्र कन्या शिब्बा के अतिरिक्त सांसारिक जीवन में तीसरा कोई आश्रय नहीं था। अतः असहाय और बेबसी की सजीव प्रतिमा माता-पिता की स्थिति इस मानसिक संघर्ष में अथाह सागर में डूबते हुए दीन-दुःखी नाविक के समान थी । माता के कोमल हृदय में सांसारिक उन्नति और धार्मिक उन्नति का द्वन्द होने लगा। विचारों का समुद्र उमड़ पड़ा। कभी सांसारिक भलाई और कभी यश कीर्ति के विचारों की तरंगें उठती और जगत प्रसिद्धि के महान सागर में जा गिरती, कभी धर्म उपकार और सेवा का उत्साह उत्पन्न होता और सांसारिक उन्नति स्वरूपी हिमालय पर्वत को तृण के सदृश उड़ा ले जाता। अन्त में पुत्र का परिपूर्ण युक्तियुक्त बातों से सन्मुख वृद्ध माता-पिता की युक्तियां निर्बल सिद्ध हुई। अविनाशी सत्य और एकाग्रता के नियमानुसार जीवन व्यतीत करने वाले बालक के सन्मुख संसार के क्षण-भंगुर यश-वैभव ठहर न सके। माता-पिता ने कहा-"रुप! हम आप को सत्यनिष्ठा के मार्ग में बाधा डालना नहीं चाहते, परन्तु कुछ

समय और हमारे निकट रह कर स्वाध्याय, योगाभ्यास और शास्त्रों का अध्ययन करो, आपके पवित्र जीवन की दिव्य-ज्योति हमारे कुल को पवित्र करेगी। फिर हम निश्चिन्त होकर प्रसन्नतापूर्वक आपके संयमी बनने में वास्तविक सहायता भी कर सकेंगे।"

रुपचन्द ने सादर प्रणाम करके स्वीकृति देते हुए निवेदन किया- "पूज्य माता-पिता की आज्ञा का सदैव सप्रेम और सादर पालन करना मेरा कृत्तव्य है, इसलिए मैं आपके आदेशानुसार ही कार्य करूँगा, परन्तु घर के काम-काज के प्रति मेरी उदासीनता के लिए आप मुझे क्षमा-प्रदान करने की कृपा करेंगे ही।"

सम्वत् 1888 में पूज्य आचार्य श्री रतीराम जी महाराज का चातुर्मास मालेरकोटला में हुआ। उस समय व्याख्यान वाचस्पति कवि श्री नन्दलाल जी महाराज अपने मधुर व्याख्यानों द्वारा अमृत-वर्षा किया करते थे। श्रोतागण बड़ी संख्या में आते और आपके पवित्र वाणी से अपने हृदयों को पवित्र करते थे।

आध्यात्मिकता के राजमार्ग पर

श्री रुपचन्द जी के लिए ये व्याख्यान अत्यन्त प्रभावशाली व दिशा देने वाले सिद्ध हुए। स्वर्ण तो थे ही अब कुन्दन बन गये। श्री रुपचन्द जी को इस चातुर्मास में शास्त्रों का स्वाध्याय का उत्तमोत्तम अवसर प्राप्त हुआ। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन सूत्र, प्रवचन-सार इत्यादि अनेक ग्रन्थों का आप ने अध्ययन किया। महाराज श्री नन्दलाल जी जैसे आदर्श महा-मुनि से विद्या-लाभ लेकर श्री रुपचन्द जी जीवन के उस मोड़ पर आ खड़े हुए जहाँ से आध्यात्मिकता का राज्य मार्ग आरम्भ होता है।

पूज्य श्री रतीराम जी महाराज विहार करके बड़ोदा की ओर जाने लगे, श्री रुपचन्द जी इस अवसर का पूर्ण लाभ उठाना चाहते थे। आचार्य जी के सत्य धर्मोपदेश उनके हृदय की आध्यात्मिक मस्ती की पूर्णता तक पहुँच चुके थे। उन्होंने नियमपूर्वक माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया और साहस पूर्वक दीक्षा लेने की अनुमति प्रदान करने की प्रार्थना की। तीन मास से कुछ अधिक समय घर में व्यतीत करने के पश्चात् माता-पिता ने उन्हें साधु बनने की स्वीकृति देकर कृतार्थ किया। इसी समय श्री रुपचन्द जी ने अपनी साधु नियमावली समाप्त कर ली और अब गुरुदेव की खोज होने लगी। दैवयोग एक बड़ोदा निवासी जैन जाट मालेरकोटला में आया और आपसे भेंट की। श्री रुपचन्द जी उस से समाचार पाकर कि श्री देव दनौदा में विराजमान हैं और शीघ्र ही बड़ोदा पधारेंगे। यह समाचार पाकर उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ-

जो करना है सो अब करले,

कल की सार न जाने कोय?

के सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने यही उपयुक्त समझा और वे माता-पिता की सेवा में आज्ञा के लिए प्रस्तुत हुए।

माँ के आँसुओं और पिता के बिलखते प्यार से आज्ञा लेकर श्री रुपचन्द जी चल दिए उस गुरु की सेवा में जहाँ से उन्होंने उस पथ पर चलना सीखना था। जिस मार्ग के लिए वे जन्म-जन्मांतरों से साधना करते चले आ रहे थे। इस प्रकार सम्वत् 1893 फाल्गुण कृष्ण द्वितीया को वे चल दिये बड़ोदा की ओर।

आलोकमय त्यागीजीवन

जैन-आचार्य श्री नाथूराम जी महाराज की प्रशंसनीय उदारता और श्रेष्ठ आत्म-ज्ञान को सभी मानते थे। आपके शिष्य श्री रायचन्द जी महाराज अद्वितीय विद्वान, दिव्य तपस्वी और परोपकारी थे। परम-पूज्य श्री रतीराम जी महाराज ने जैन धर्म का प्रचार करने के लिए अगणित यातनाओं को सहते हुए और आकस्मिक विपत्तियों का सामना करते हुए,मेवाड़, काठियावाड़, गुजरात, मालवा, उज्जैन, बीकानेर आदि रियास्तों तथा प्रान्तों मे जैन धर्म की ध्वजा लहराई। लोकमान्य जैन-रत्न प्रसिद्ध कवि श्री नन्दलाल जी महाराज की विद्वत्ता और ज्ञान की सर्वत्र प्रसिद्धि हो चुकी थी। उनके साहित्य साधना ने उन्हें सर्वप्रिय बना दिया था। इन महापुरुषों के अतिरिक्त अन्य कईं सन्त और पुण्य-चरिता विदूषी देवियाँ इस समय धर्म प्रचार कर जन-मानस को पवित्रता प्रदान कर रही थीं। श्री रुपचन्द जी इन्हीं महात्माओं के अनुयायी बनकर उनके आदेशानुसार अध्यात्म-मार्ग पर चलने के लिए पूज्य आचार्य श्री रतीराम जी महाराज और कवि श्री नन्दलाल जी महाराज के चरणों में संयम धारण करने के लिए उपस्थित हुए।

दीक्षा महोत्सव

बड़ौदा नगर में फाल्गुण शुक्ला एकादशी सम्वत् 1894 का शुभ दिन दीक्षा महोत्सव के रूप में युग-युग तक स्मरणीय रहेगा। जैन जगत में यह पुण्य-दिवस सदा स्मरणीय एवं अभिनन्दनीय रहेगा क्योंकि इस दिन का सम्वन्ध एक ऐसी महान शक्ति-सम्पन्न पवित्र आत्मा के साथ है जिसने अपने तपोबल से विश्व को चकित कर दिया। आध्यात्मिक शक्तियों के गौरव की प्रतिष्ठा की और जिसने भारत की धार्मिक जागरुकता का आदर्श उपस्थित किया। सभा मण्डप में उपस्थित मुनिश्वरों के तेज और प्रताप के सन्मुख सांसारिक सुख-सम्पत्ति तथा यश वैभव निकृष्ट और त्याज्य प्रतीत हो गया। लौकिक ख्याति मानो इस महोत्सव की आलौकिक ज्योति को देखकर वहां से बहुत दूर घोर-अन्धकार और अपना मार्ग टटोल रही थी।

यह मनोहारी एवं प्रभावशील दृश्य जैन-धर्म की महानता और आचार्य श्री रतीराम जी महाराज के विशाल व्यक्तित्व का प्रदर्शन मात्र था। दर्शक एव श्रोता आध्यात्मिकता की मस्ती में झूम रहे थे। त्याग एव वैराग्य का अमिट प्रभाव सबके हृदय पटलों पर अंकित हो गया।

श्री रुपचन्द जी ने राजकीय जलूस के वैभव को त्याग दिया। ठाट-बाट की सवारी से विदा ली। रेशमी जरीदार वस्त्र उतारे। सोने के जड़ाऊ आभूषणों को छोड़ा। साधु-वेष धारण करके दीक्षा-पाठ पढ़ा। पाँच महाव्रत पालन का प्रण किया। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री नाथूराम जी महाराज के पौत्र-शिष्य आचार्य श्री रतीराम जी महाराज के शिष्य व्याख्यान वाचस्पति प्रसिद्ध कवि जैन रत्न श्री नन्दलाल जी महाराज के शिष्य बने और गुरु कृपा से से मुनिश्वरों की श्रेणी में जा मिले और रुपचन्द से श्री रुपचन्द जी महाराज हो गये। त्यागमूर्ति गुरु ने श्री रुपचन्द जी महाराज को सच्चे त्याग का पाठ पढ़ाया गुरू रूपी जौहरी ने साधना की सान पर चढ़ाकर शिष्य रूपी हीरे को और भी मूल्यवान बना दिया।

शिष्य की योग्यता का अनुमान गुरु की महानता, विद्वत्ता तथा ज्ञान से किया जा सकता है। श्री रुपचन्द जी महाराज के गुरुदेव श्री नन्दलाल जी महाराज को योग्यता, आत्मिक बल, योग और त्याग अद्वितीय थे। बुद्धिमान शिष्य के ज्ञान-स्वरूप गुरु को साधनामय गुणों और पवित्र विचारों को पूर्ण रूप से अपना लिया। इन्हीं के प्रताप से श्री रुपचन्द जी महाराज संसार के महापुरुष बन गये।

प्रथम चातुर्मास

गुरुदेव को शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य और लक्ष्य अधिकतर आत्मोन्नति ही था। यही कारण है कि मुनि श्री रुपचन्द जी महाराज की विचार-धारा और सब प्रयत्न आत्मोन्नति के लिए समर्पित हो गये। आत्म-विश्वास ने आपको अत्यन्त निर्भय और नम्र बना दिया। वे महान आपत्तियों और विकट बाधाओं का सामना सन्तोष और शान्ति से करने लगे। सहिष्णुता

बढ़ती गई । अध्यात्मपथ के पढ़ाव समाप्त होते गये। तपस्तेज प्रकाशित होने लगा। स्वाध्याय रूचि विकसित होने लगी। विहार में भी स्वाध्याय कभी नहीं रुका। रोहतक, झज्झर, फर्रुखनगर, पटौदी, रिवाड़ी होते हुए आप अल्वर पहुँचे। यहीं आपका पहला चातुर्मास था। इसमें आपको यथावत स्वाध्याय और अधिक ज्ञान प्राप्त करने का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ। आत्म शक्ति में भी वृद्धि हुई। जैन-सूत्रों की स्पष्ट और पूर्ण व्याख्या पर मनन करने के पश्चात् वैर, विरोध, अनुराग, घृणा, और मोह धीरे-धीरे स्वयं ही इन्हें छोड़ने लगा। त्याग बढ़ता गया। मानसिक शान्ति अन्तःकरण में अधिष्ठित होती गई।

चातुर्मास बीतने के पश्चात आप पूज्य आचार्य और गुरुदेव के साथ दिल्ली को विहार किया। मार्ग में झरका,फिरोजपुर, गुड़गांव आदि नगरों का भ्रमण करते हुए दिल्ली में एक कल्प विचरण किया।

यहाँ पर मुनि श्री रुपचन्द जी महाराज ने जैन-शास्त्रों के विषय में प्रवचन दिया। ओजस्विकता, विद्वत्ता एवं प्रभावशीलता की दृष्टि से आपका यह प्रवचन सबके लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया। सर्वत्र प्रशंसा हुई और आप की वक्तृता की धाक बैठ गई। प्रशंसा एवं श्लाघा से मुक्त श्री रुपचन्द जी महाराज ने गुरुदेव से निवेदन किया कि अभी मुझे ज्ञान-प्राप्ति और विद्याभ्यास की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। इससिए कोथा ग्राम के चातुर्मास तक सारा समय सूत्रों के स्वाध्याय और उनके मनन में लगाना चाहता हूँ। सम्वत् 1895 में श्री रुपचन्द जी आचार्य़ श्री और गुरुदेव के साथ सुनाम पधारे। जहाँ पूज्यवर रघुनाथ दास जी एक प्रसिद्ध विद्वान ज्योतिषी थे । आपके ज्योतिष ज्ञान की चर्चा चारो ओर फैली हुई थी। पटियाला, समाना, रोढ़ी ,बुडलाडा, राणियाँ, टोड हाल एवं भटिंडा आदि नगरों में श्रद्धालु आपके निष्ठावान भक्त थे। आपके ज्योतिष और चिकित्सा की समृद्धि पटियाला दरबार तक पहुँची तो महाराज पटियाला ने उनकी परीक्षा लेना चाहा। दरबार की ओर से एक पत्र दिया गया कि यह यति

जी के पास पहुँचाकर शीघ्रातिशीघ्र उत्तर लायें। दरबारी आदेशानुसार सुनाम पहुँचा और पत्र देकर उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। पूज्य यति जी ने खोलकर पढ़ा, उसमें लिखा था-

" बताईये पटियाला नरेश आज से तासरे दिन नगर के किस द्वार से कौन सी सवारी पर निकलें गे ?"

पूज्य यति जी समक्ष बड़ी जटिल समस्या खड़ी हो गई। मान-मर्यादा का प्रश्न था। कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था। वे बड़े चिन्तित हो गये। उन्हों ने महाराज श्री नन्द लाल जी को देखा तो निराशा के अन्धकार में उन्हें आशा कि किरण नजर आई। आदर-सत्कार के साथ अभिवादन के पश्चात उन्होंने महाराज के समक्ष निवेदन किया-

" महाराज ! कृपया यह पत्र देखिये, इसका उत्तर देना मेरे लिए अशक्य है, परन्तु ठीक उत्तर दिए बिना छुटकारा भी नहीं हो सकता।"

महाराज श्री जी ने पूछा-" तो फिर आप चाहते क्या है ?"

पूज्य ज्योतिषी ने नम्रता से निवेदन किया कि अपनी प्रचीन गद्दी की मान-रक्षा और जैन-धर्म का प्रभाव, यह सब आप की कृपा से ही सम्भव है।

महाराज श्री जी ने उत्तर लिख कर दरबारी को दिलवाया और साथ में कहा- " पटियाला नरेश की सवारी जब चार दिवारों से बाहर निकलने के पश्चात इस पत्र को पढ़ा जाए।" दरबारी ने महाराज के आदेशानुसार पटियाला नरेश के समक्ष उपस्थित हुआ और पत्र देकर कहा- लिखित पत्र को नियमानुसार खोला जाए। महाराज पटियाला जब नगर से बाहर निकले तो पत्र खोलने की आज्ञा दी। उसमें लिखा था-

" महाराज पटियाला आज नगर की चार दिवारी को एक भाग को गिराकर खच्चर पर सवार होकर नगर के बाहर निकलेंगे। "

इस भविष्यवाणी एवं चमत्कार से जनता बहुत प्रसन्न हुई और यति जी की बहुत ख्याति हुई। रियसती सरकार की ओर से एक"मानपत्र" भेजा गया और डेरे के नाम पुरस्कार स्वरुप एक जागीर लगा दी गई।

पूज्य यति जी पत्र मिलते ही परवाना लेकर आचार्य श्री रती राम जी और गुरुदेव श्री नन्दलाल जी की सेवा में उपस्थित हुआ और निवेदन किया-" महाराज! यह सब आप की कृपा का फल है, सेवा की आज्ञा दीजिए।"

प्रशंसा और प्रसिद्धि से विरक्त गुरुदेव ने कहा-" यति जी! जैन भिक्षु को मान-पत्र एवं जागीर से क्या प्रयोजन? " .यह कहते हुए मान-पत्र एवं जागीरनाम यति को दे दिए। उदार –चरित्र मनस्वी महापुरुषों से यही तो आशा की जा सकती है। इस घटना पर मुनि श्री रुपचन्द जी महाराज के हृदय पर गुरुदेव जी की विद्वता, सर्वज्ञता,मानसिक पवित्रता, त्याग भाव की महत्ता का और भी अधिक श्रद्धापूर्ण प्रभाव अंकित हो गया।

परन्तु साथ ही ज्योतिष विद्या की अनिश्चित बातों के प्रति शंकाशील एवं अनुसंधान-प्रिय भी रुपचन्द जी महाराज ने गुरुदेव की सेवा में निवेदन किया-"गुरुदेव! यह घटना तो दैवयोग से यय़वत् घटी है, परन्तु आप प्रायः कहते हैं कि ज्योतिष विद्या न्श्चिथ और सत्य विद्या नहीं है। मुनि- महाराज- गणों में यदि ज्योतिष तथा दैवज्ञता के प्रचार अथवा समर्थन की प्रथा चल पड़ेगी तो यदि कोई भविष्यवाणी असत्य सिद्ध हुई तो इससे जैन-धर्म का कितना दोषारोपण होने लगेगा ? भले ही इसमें जैन-धर्म का तनिक भी दोष न हो। इसके विचार मात्र से मेरी आत्मा कांप उठती है, क्या मेरा समाधान करने की कृपा करेंगे ? "

गुरुदेव ने कहा,"रुपचन्द! ज्योतिष विद्या को मैंने गृहस्थ में सीखा था और साधु बनकर उसमें प्रवीणता भी प्राप्त की। संसार में यह विद्या बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।"

मुनि रुपचन्द ने पुनः प्रार्थना की,:महाराज! उन सूत्रों में जो आपने मुझ को पढ़ाये हैं स्पष्ट लिखा है कि केवल ज्ञान ही पूर्ण ज्ञान है। वही शुद्ध कर्म का मार्ग है। ज्योतिष विद्या तो देख-रेख मात्र है। जो कभी असत्य एवं मिथ्या भी सिद्ध हो सकती है । इसलिए ज्ञान-वाणी अर्थात् सूत्रों का प्रचार करना ही परम उपयोगी हो सकता है। ज्योतिष पर मेरी आस्था टिक नहीं रही है। अत: मैं जैन धर्म की प्रभावना के लिए तप को ही विशेष महत्ता देना चाहता हूँ।" गुरुदेव ने आदेश किया कि तुम ज्ञान बल और चरित्र-चर्या द्वारा ही जैन-धर्म को अपनाओ और जनता को धर्मनिष्ठ बनाओ।

आत्मसिद्धि का महान चमत्कार

श्री मुनि रुपचन्द जी ने गुरुदेव की आज्ञा से उसी समय से एकल विहारी बनना स्वीकार किया और चौदह वर्ष एकल-विहारी रहे। इस काल में आपने सम्वत् 1896 का चातुर्मास कोथा ग्राम की एक कच्ची कोठड़ी में किया, जिसमें केवल एक द्वार और आगे एक फूस का छप्पर था। आपका यह चातुर्मास तपः परीक्षा की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। वर्षा ऋतु में असह्य गर्मी सहन करते हुए अंधेरी कुटिया में आपका निवास निःसन्देह सहिष्णुता और तपश्चर्या का जीता जागता चरित्र, तप तथा त्याग के पूर्ण आदर्श का दिग्दर्शन था।

इन्हीं दिनों में एक आकस्मिक घटना घटी जिससे बहुत लोग आकर्षित हुए। चारों ओर आपकी आत्म –सिद्धि की प्रशंसा होने लगी। वहाँ एक औघड़ सन्यासी बाबा रहते थे, जिनके चमत्कारों की चर्चा चारों ओर फैली

हुई थी। देवयोग से इस गांव के दो जाटों का उस औघड़ बाबा से झगड़ा हो गया और उसी दिन उन दो जाटों की रात को मृत्यु हो गई।

अभी इस घटना को लोग भूल भी नहीं पाये थे कि गांव के एक महाजन से औघड़ बाबा से लड़ाई कर ली और वह महाजन भी बाबा के क्रोध का शिकार हो कर उसी रात को चल बसा। इन मृत्यु के भयभीत ग्रामीण लोग औघड़ बाबा के भय से उसकी सेवा करने लगे।

जिस वर्ष स्वामी श्री रुपचन्द जी का चातुर्मास कोथा में था, उस वर्ष वर्षा ने होने के कारण ग्रामीण किसानों का बुरा हाल हो गया। खेती-बाड़ी की सिंचाई तो क्या पशुओं को पिलाने के लिए भी पानी नहीं मिलता था। ग्राम निवासी एकत्रित होकर औघड़ बाबा के पास गये और प्रार्थना की-

" बाबा जी! कृपया वर्षा के होने का कोई प्रबन्ध कीजिए ।" परन्तु सम्मान और प्रसिद्धि का भूखा अंहकारी औघड बाबा सर्प के समान फूँकार कर बोला-"कि जिस मुँह बंधे जैनी की सेवा- भक्ति करते हो, क्यों नहीं उससे वर्षा करवा लेते ? जाओ! जब तक वह यहाँ है, वर्षा नहीं हो सकती।"

औघड की बात सुनकर ग्रामवासी एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। विचारे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गये। वे कुछ कहना चाहते थे, परन्तु औघड़ के भयंकर क्रोध को टालने का साहस कहाँ से लाते ? विवश होकर लौट आए। कानाफूसी होने लगी।

कुछ ने कहा-"क्यों न जैन मुनि को ग्राम से निकाल दिया जाए ?" दूसरे ने धीरे स्वर में कहा-" भला उसने हमारा क्या बीगाड़ा है?" किसी ने दूर की सूझाते हुए पहले का समर्थन किया और चेतावनी दी की-"औघड़ बाबा का क्रोध ग्राम का सत्यानाश कर देगा।" कुछ समझदारों ने तनिक निर्भय

होकर सब को समझाते हुए कहा-" हमें तो औघड़ बाबा की बाबा की बात जंची नहीं । दूर-दूर के अनेक ग्रामों में जनता अकाल-पीड़ित है, कहीं भी तो वर्षा नहीं हो रही है, क्या सब जगह यह मुनि बैठे है ।" जितना मुंह उतनी बातें हो रहीं थीं।

व्याख्यान के समय होने पर लोग कथा सुनने के लिए श्री रुपचन्द जी महाराज के पास आने लगे। ग्राम के वयोनृद्ध श्रावक गुलजारी मल ने मुनिवर श्री रुपचन्द जी महाराज से निवेदन किया, गुरुदेव! बाहर छप्पर के नीचे पधारिये कथा का समय हो गया है।

महाराज श्री ने उत्तर दिया-" भाई! वर्षा होने की सम्भावना है इसलिए आज भीतर ही बैठें गे।"

गुलजानीलाल का हृदय आनन्द विबोर हो गया, उसके नेत्रों मे प्रेमाश्रु झलकनें लगे। उन्होंने आकाश की तरफ देखा तो सूर्य-देव पूर्ण तेज से चमक रहा था, परन्तु दृढ़ विश्वासी गुलजारी मल ने श्रोंताओं को अन्दर बैठने का आग्रह किया, व्याख्यान प्रराम्भ हुआ, अभी आधा भी व्याख्यान नहीं हुआ था कि एक छोटी सी बदली दृष्टिगोचर हुई और आँधी के प्रबल प्रभाव से पल भर में वह आकाश पर छा गई और देखते ही देखते सारे गाँव को जलमग्न कर दिया। जलथल एकाकार नजर आने लगा। श्री रुपचन्द जी महाराज के तपोबल की महिमा के समक्ष ग्रामवासियों के मस्तक झुक गये। जैन धर्म की श्रेष्ठता ने अनायास ही लोगों के हृदय पर अधिकार कर लिया।

इस वर्षा ने औघड़ बाबा को शीतलता के स्थान पर ताप ही दिया। वह आग-बबूला हो गया और मुनिवर श्री रुपचन्द जी महाराज से बदला लेने के लिए व्याकुल हो गया। वह क्रोधाविष्ठ होकर श्री रुपचन्द जी महाराज की ओर चला आया। शान्त चित ओजस्वी मुनि के दर्शन करते ही वह शान्त हो गया। मुनि महाराज पात्री में पानी पी रहे थे। लकड़ी का यह

सुन्दर पात्र देखकर उसने बात बढ़ाने के लिए उद्दण्डतापूर्वक कहा- ला यह पात्री मुझे दे दो। मुनिवर मुस्कराए और बोले-" बाबा! साधु धर्म का पालन किए बगैर पात्री नहीं मिल सकती। इस पात्री का वही अधिकारी हो सकता है जो मेरे जैसा हो।"

औघड़ तिलमिलाया और क्रोधित होकर बोला-" अच्छा देखा जाएगा, जरा सम्भल के रहना, मै औघड़ हूँ। पात्री न देने का परिणाम तुझे भोगना ही पड़ेगा।"

मुनिवर ने प्रेम और क्षमा का दृष्टि से देखा वह चला गया और अपनी तामसी साधना के लिए ग्राम के जोहड़ के किनारे जा बैठा।

जब ग्राम वालों को औघड़ बाबा की अप्रसन्नता और क्रोधाग्नि प्रचण्ड होने का समाचार मिला तो वह अत्यन्त व्याकुल हुए। महाराज से निवेदन किया, " मुनिवर! यह अच्छा नहीं हुआ। बाबा कोई न कोई अनहोनी आवश्य करेगा।"

भय और निराशा से मुक्त आत्म-विश्वासी मुनि ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा-" आप निश्चिन्त रहे, होनहार को कोई नहीं टाल सकता।"

रात्रि हो चुकी थी। श्रावक और ग्रामीण लोग भयभीत होकर कुटिया के कुछ दूरी पर कच्चे बरामदे में सिमटे बैठे थे। औघड़ की आंतकमयी तामसी साधनाओं से डर एवं सहमे हुए। परन्तु मुनिराज का दिव्य तपः शक्ति उन्हें बीच-बीच में आश्वस्त भी कर रही थी।

अर्ध रात्रि का समय था, अचानक लोगों ने देखा कि अग्नि की एक दहकती हुई ज्वाला बिजली की तरह चमकती और कड़कती हुई कुटिया की ओर आई जिसमें तपोमूर्ति श्री रुपचन्द जी महाराज समाधिस्थ थे परन्तु वह ज्वाला कुटिया के द्वार से टकरा कर लौट गई। यह ज्वाला रात भर में तीन बार आई और तीनों बार मुनिराज के तप से लौट गई। प्रभात

हुई। दर्शक भय के मारे कांप रहे थे। उन्हें भयानक परिणाम की सम्भावना ने निराश के अथाह सागर में डूबो दिया था।

श्रावक गुलजारी मल अधिक धैर्य न रख सका, वे साहस करके सहमते हुए कुटिया की ओर चले। अन्य लोग भी साथ हो चले। उन्होंने ने दूर से देखा कि मुनिवर श्री रुपचन्द जी महाराज समाधि लगाये खड़े हैं। सब के मस्तक शान्त तपस्वी के चरणों मे झुक गये। थोड़ी ही देर में ग्राम का मुखिया ने आकर प्रसन्नतापूर्वक सूचना दी कि-" महाराज ! औघड़ बाबा तलाब के किनारे पर मरा पड़ा है।"

लोग तुरन्त बोल उठे- "अच्छा हुआ बहुत अत्याचारी था।"

परन्तु महाराज श्री ने उन्हें समझाते हुए कहा-" नहीं भाई! ऐसा मत कहो, संसार में कोई बुरा नहीं है, परन्त कभी-कभी मनुष्य भटक जाता है और उसके बुरे कर्म उसे समाप्त कर देते हैं।"

आपके इस शुभचिन्तन से लोगों की काया पलट गई, जनता को आपके व्यक्तित्व में श्रद्धा और जैन धर्म में अगाध श्रद्धा और प्रेम हो गया। ग्राम-निवासी भारी संख्या में जैन धर्म के प्रेमी बन गए। चातुर्मास पूरा हुआ मुनि महाराज ने विहार किया और ग्राम-निवासियों ने आदर और श्रद्धा से विदाई दी और सबके मुख पर एक ही प्रार्थना थी महाराज शीघ्र पधारने की कृपा करना।

सेवा का निस्पृह आदर्श

मुनिराज गांव-गांव में नंगे पांव भ्रमण करते हुए जींद पधारे। यहाँ 1008 श्री पूज्य रायचन्द जी महाराज वृद्धावस्था में स्थानापति हो गये थे। अधिकतर ज्वर-पीड़ित रहते थे। स्वामी जी ने आपकी सेवा भक्ति के लिए रहना स्वीकार कर लिया। आठ प्रहर में केवल एक बार भोजन करते, रात्रि को बहुत कम सोते और अपना सारा समय पूज्य श्री जी की सेवा-सुश्रषा में व्यतीत कर देते। इस अनन्य सेवा से पूज्य श्री स्वस्थ हो गये तो

आपने कैथल विहार करने का विचार किया। प्रस्थान करने से पूर्व देखा कि पूज्य श्री जी के पास पर्याप्त वस्त्र नहीं हैं, इसलिए महाराज श्री ने अपने वस्त्र (चादर और चोलपट्टा) भेंट कर दिए। पूज्य श्री जी ने कहा-" तुम्हें भी आवश्यकता है?"

आपने निवेदन किया-"किन्तु आपका वस्त्राभाव दूर करने के पश्चात मुझे आवश्यकता हो सकती है, पहले नहीं।"

फिर पूज्य श्री जी सिद्धान्त का आश्रय लेते हुए कहा-" आप अपने वस्त्र मुझे भेंट कर स्वयं और ढूंढोगे, मुझे यह उचित प्रतीत नहीं होता।" श्री रुपचन्द जी महाराज ने उनका यह संदेह दूर करते हुए उत्तर दिया," महाराज ! मैं एक वर्ष तक वस्त्र स्वीकार नहीं करूँगा और न ही अपनी आवश्यकताओं के लिए किसी गृहस्थ के प्रति बोझ का कारण बनूंगा।"

वृद्ध साधु युवक साधु का यह त्याग देखकर चकित रह गये। उन्होंने आनन्दित वाणी में कहा-"रुप आपका यह त्याग आपके महान व्यक्तित्व को प्रकट करता है।"

स्वामी श्री रुपचन्द जी महाराज ने नम्रता से निवेदन किया-"आपकी दया दृष्टि और आशीर्वाद है।" आपने उनसे आज्ञा प्राप्त करके कैथल की ओर प्रस्थान किया।

साधना की कसौटी पर

मार्ग में एक छोटे से ग्राम से होकर निकले। यहाँ आपकी तपस्या एवं ब्रह्मचर्य की परीक्षा का अद्‌भुत दृष्य देखने को मिला। ग्राम छोटा सा था,

डेरे में निवास किया। आप दोपहर को आहार लेने निकले, परन्तु न मिला, तो आपने उस दिन व्रत कर लिया। फिर दूसरे दिन भिक्षा याचना की परन्तु भोजन प्राप्त न हुआ, दूसरे दिन भी निराहारी ही रहे। तीसरे दिन गोचरी के लिए गये, कोई प्रबन्ध न हुआ, तीसरे दिन भी आहार के बिना ज्ञान-ध्यान के पश्चात सो गये। इसी प्रकार कई दिन व्यतीत हो गये, भिक्षा को जाते पर कुछ न मिलता तो लौट कर चुपचाप अपने स्वध्याय में निमग्न हो जाते। डेरे के सामने नन्दीबाई नामक की एक पुण्यशीला नारी का घर था। वह यह विचित्र दृष्य देखती रहती थी। वह महाराज श्री जी के तपस्वी जीवन से प्रभावित हुई। सेवा और भक्ति-भाव से प्रेरित होकर उसने स्वयं भोजन बनाकर थाली में परोसा और डेरे की ओर चल दी। महाराज के सन्मुख पहुँच कर निष्कपट श्रद्धा से निवेदन किया-"महाराज भोजन कीजिए !" महाराज ने उत्तर दिया-"बहन! जैन साधु इस प्रकार भिक्षा नहीं लेते।"

शुभ चिन्तक देवी ने समझा कि साधु महोदय दक्षिणा की अभिलाषी है, कहने लगी, आप भोजन कीजिए, यह कहकर थाल महाराज के सामने रखने के पश्चात् घर लौटी और दक्षिणा ले कर चली आई। जब भोजन उसी प्रकार पड़ा देखा ते कहा-" महाराज! भोजन क्यों नहीं खाया ? लीजिए दक्षिणा भी स्वीकार कीजिए।"

महाराज श्री ने उत्तर दिया-"बहन! मेरे भोजन लेने की यह रीति नहीं है, आप यह वापिस ले जायें।"

सरल हृदय नन्दी देवी ने बार-बार प्रार्थना की और दोनों हाथों से आपके चरणों को छूने का प्रयत्न किया। महाराज श्री ने उसे पांव पकड़ने से जितना रोकते वह उतने से अधिक ही श्रद्धा-भाव से पांव पंकज छूने का प्रयास करती।

यह दृष्य ग्राम के कईं लोगों ने देखा और अनेक प्रकार की चर्चाएं फालाईं। किसी ने बेपर की उड़ाई और जो भी आया जी में कह डाला। कितने ही अपने संकुचित विचारों के कारण महाराज श्री जी के पवित्र-चरित्र सम्पन्न व्यक्तित्व पर दोषारोपण करके पाप के भागी बने।

इधर महाराज श्री नन्दी बाई को साधु के कर्त्तव्य और उसके भिक्षा ग्रहण करने की रीति समझाते रहे और उधर नन्दी बाई पश्चाताप करती हुई क्षमा-याचना करती रही। महाराज स्त्री-स्पर्श का पश्चाताप करने लगे और वह बहन अपने कृत्तव्य का चिन्तन करती हुई भोजन लेकर घर चली गई।

संसार में कईं प्रकार के लोग हैं भले भी और बुरे भी। इनमें से एक आग लगाकर तमाशा देखने वाले व्यक्ति ने ग्राम के मुखिया चौधरी रामभज को उसकी धर्मपत्नी नन्दीबाई के सम्बन्ध में निराधार सूचनाएं देकर उतेजित कर दिया। वह क्रोध के मारे लाल-पीला हो गया। क्रोध और नसमझी ने उसे बदला लेने से प्ररित होकर क्रोधावेश में आकर महाराज श्री पर आक्रमण करने को भी प्रस्तुत हो गया। सारा ग्राम वहां पर आ पहुंचा। राभज ने क्रोध में दाँत कटकटाते हुए कहा-"ढ़ौंगी बाबा बना फिरता है, अब तू बच नहीं सकता।"

उसके साथी ने कहा-" मारो इस ढ़ौंगी को, जीता मत छोड़ो।"

महराज श्री ने गम्भीर मुद्रा में कहा-" चौधरी ! इस प्रकार आवेश में क्यों आते हो, कुछ विवेक से काम लो। झूठे अपवादों के जाल में फंसकर इस प्रकार होश नहीं खोना चाहिए।"

चौधरी बोला और कड़का-" इस प्रकार झूठ बोलकर तुम बच नहीं सकते।"

सम्भव था कि शीघ्र ही कोई अनर्थ हो जाता, परन्तु महाराज श्री की अन्तः प्रेरणा से नन्दी बाई तुरन्त दौड़ती आई. वहाँ पहुँच गई और बोली- " कितना अनर्थ है ऐसी तपस्वी के लिए अपशब्द कहते हे आप लोगों को डर नहीं लगता ? तीन जिन से भूखे इस महात्मा ने मेरा लाया हुआ भोजन तक ग्रहण नहीं किया। मुझे चरण तक छूने नहीं दिया। स्त्री स्पर्श को पाप मानने वाले साधु के प्रति आपका यह दुर्व्यवहार ?" यह कहकर उसने जनता के समक्ष सारी आप बीती वर्णन कर दी

सब को अपने किये पर पश्चाताप हुआ, सब ने महाराज श्री जी से क्षमा मांगी।

महाराज श्री जी ने उदारता पूर्वक कहा-" अज्ञान और क्रोध के आवेश में मनुष्य कई बार सब कुछ भूल बैठता है। सच्चाई यह है कि भूल करना अपराध नहीं, वह तो मनुष्य से हो ही जाती है, परन्तु भूल का ज्ञान होने पर पश्चाताप न करना भारी अपराध है। मेरा विश्वास है कि अब आप लोग प्रण करेंगे कि आप कभी भी आवेश में आकर बिना विचारे कोई काम नहीं करेंगे। विचारहीनता ही सब दुष्कर्मों को जन्म देती है। ग्रामीणों ने आपको विश्वास दिलाया कि वह उनके आदेशानुसार सजग, विवेकशील और सदाचारी रहते हुए जीवन व्यतीत करेंगे। कुछ दिन यहाँ ठहर कर आपने विहार किया और आप विभिन्न स्थानों पर अमृत वर्षा करते हुए कैथल पहुंचे।"

कैथल पहुँचने से पूर्व ही आप के आत्म-निग्रह और तपस्या की प्रसिद्धि वहां पहुँच चुकी थी। स्वागत के लिए लोग एकत्रित थे। दूर से उन्हें आते देखकर सभी के हृदय में हर्षोल्लास की लहर दौड़ गई। प्रेम और आदर पूर्वक उन्हें स्वच्छ स्थान पर ठहराया गया। जनता ने धर्म-उपदेश सुना, तपस्वी जीवन का प्रभाव देखा और आनन्दित होकर सभी ने विनय पूर्वक

चातुर्मास की विनती की। आपने उत्तर दिया-" भाई ! चातुर्मास अभी बहुत समय है, कल की कौन जाने ? यदि समय और स्थिति से अवकाश मिला तो कुछ दिन ठहरेने का प्रयत्न करूँगा।" तदनुसार बीस दिन तक कल्याणकारी उपदेश देने के बाद आपने सुनाम की तरफ विहार किया।

श्रद्धेय विद्यासागर

जैन-दिवाकर साहित्य रत्न पूज्य श्री रामलाल जी महाराज अपने समय के विद्या-सागर समझे जाते थे। दूर-दूर के विद्यार्थी वं जिज्ञासु आपकी सेवा में उपस्थित होकर अपनी शंकाओं का समाधान पाते एवं तत्त्व-ज्ञान प्राप्त किया करते थे। आप जैन सूत्रों, वेदों, पुराणों आदि अनेक धार्मिक और आध्यात्मिक ग्रन्थों के महान ज्ञाता थे। आपने जैनागमों का मन्थन करके जो ग्रन्थ रुप अमृत कलश हमें प्रदान किये हैं वे अमृत-कलश भण्डारों में पड़े सूख रहे हैं। उनके प्रकाशन की व्यवस्था के प्रति जैन-समाज उपेक्षा मुझे सदा खटकती रहती है। उनके प्रकाशन की व्यवस्था हमारा सांस्कृतिक कर्त्तव्य है।

सम्वत् 1897 और 1898 ई0 में आपके चातुर्मास क्रमशः सुनाम और रायकोट में हुए। श्री रुपचन्द जी महाराज ने भी अपने चातुर्मास क्रमशः इन्हीं स्थानों में किये। यहाँ आपको पुनः ज्ञान-प्राप्ति का अत्यन्त सुन्दर अवसर मिला। अप्राप्य रत्न जौहरी के पास पहुँचा तो वास्तविक रूप में अमूल्य बन गया।

श्री सागर में गोते

श्री स्वामी रुपचन्द जी महाराज दिन रात शास्त्रों का अध्ययन करते रहे। विभन्न मत-मतान्तरों के ग्रन्थों का स्वाध्याय किया। दिन के प्रकाश में जब तक पढ़ सकते पढ़ते और रात्रि के अन्धकार में पढ़े हुए विषयों का मनन और उसे कण्ठस्त करते। जब निंद्रा आने लगती तो खड़े हो जाते, परन्तु उनका ज्ञान प्राप्ति का निरंतर उद्योग कभी नहीं थका। आपके नेत्र

मुंद जाते, निद्रा आ जाती, परन्तु निद्रावस्था में भी शास्त्रों का पाठ आठों पहर स्फुरित होता रहता था। श्री रामलाल जी महाराज आप की इस एकाग्रता को देखकर कहा करते- "रुप! तुम तो ज्ञान स्वरूप हो गये हो। संसार के नभ-मंडल पर चन्द्रमा के समान चमकोगे।"

स्वामी रुप चन्द जी महाराज नम्रता से उत्तर देते-" मैं तो जिज्ञासु और विद्यार्थी ही रहना चाहता हूँ। महाराज! यह सब आपके आशीर्वाद का प्रताप है।"

गम्भीरता और दूरदर्शिता स्वामी जी को प्राकृतिक रूप में मिली हुई थी। संयम और तपस्या आपके स्वभाव बन गये थे। योग्यता और विद्धता ने आपके तप में चार चाँद लगा दिये।

चातुर्मास समाप्त होने पर भी श्री रामलाल जी महाराज की विदाई लेकर ग्राम-ग्राम में भ्रमण करने लगे। जहाँ कहीं भी आप गये, आपकी योग्यता, तपस्था, सहनशीलता और लोक सेवा का सम्मान हुआ, आपके तपस्वी व्यक्तित्व ने सब को प्रभावित कर दिया और अनुगामी बन गये।

विश्व-प्रेम में लीन होकर आपने अपने-आप को जगत-व्यापी सेवा के लिए समर्पित कर दिया। कई लोगों को संसार के अथाह गहराई में डूबने से बचाया। श्री बिहारीलाल जी महाराज, स्वामी श्री महेषदास जी, श्री कर्मचन्द जी, स्वामी श्री धनपतराय जी और श्री वृषभान जी महाराज आदि लब्धि प्रतिष्ठित साधुवर्ग आपकी दीक्षा-शिक्षा और सुप्रयत्नों का फल है जो जैन समाज को जीवन चर्चा में नेतृत्व प्रदान कर चुके हैं।

अब आपने अलवर,सुनाम, मालेरकोटला, सामाना, कोथा, नाभा, पटियाला, बड़े छींटा वाला, रायकोट भदौड़, फरीदकोट तथा जगराओं आदि स्थानों मे चातुर्मास करके श्रावकों को उनके परम कर्त्तव्य का ज्ञान प्रदान किया और सहस्त्रों ग्रामों में जैन ध्वजा लहराई। आप जीवन भर महावीर का सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने का निरन्तर सफल प्रयास

करते रहे । आपका आत्म-निरीक्षण अद्वितीय था। आपकी प्रशंसनीय सेवाओं ने मानवता के लिए परोपकार का पथ प्रकाशित किया। अपने प्रेमामृत से धर्म-वृक्ष को सींचा। स्वयं सत्य और सेवा के सुमार्ग पर चल कर जनता को सच्ची भक्ति और सदव्यवहार का मार्ग सिखया। जैन-धर्म की उत्तमता और महानता दर्शाकर सहस्त्रों मनुष्यों के हृदय में धर्म-प्रेम की ज्योति जागृत की। अविद्या का घर निद्रा में निमग्न श्रावकों को ज्ञान और चरित्र का सन्देश सुना कर जागृत किया और उन्हें अहिंसा, सत्य ब्रह्मचर्य, आदि रूप में संयम का पाठ पढ़ा कर वीर प्रभु के आदेश का पालन किया। अपनी सिद्ध वाणी द्वारा जैन-धर्म को प्राणी मात्र का धर्म बताते हुए अनेकान्तवाद अर्थात् सप्तभंगी न्याय की कासौटी पर परख कराकर जीव-अजीव विषयक सूक्ष्म विचारों को ऐसी सरल शैली में समझाया कि साधारण बुद्धि के व्यक्ति भी उसी हृदयङ्गय कर लेते थे। आपने जैन-शास्त्र, इतिहास, जैन सिद्धान्तिक-कर्म मीमांसा और अन्य षडदर्शनादि अनेक सर्वोपयोगी विष-विषयन्तरों पर भी विचार किया। जो जिज्ञासुओं के लिए अमृत के समान सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त आपने अपने सुसंयमित तपोबल से परिष्कृत स्वतन्त्र विचार भी प्रकट किये जिससे सांसारिक आज्ञान्धकार दूर होता रहा और सत्य ज्ञान की ज्योतिष्मान किरणें प्रकाशित होती रहीं आपने जो ज्ञान-गंगा प्रवाहित की उससे अनेक धर्मानुरागी अपनी शंकाओं की तृष्णा का निवारण करके आत्मानन्द को प्राप्त करते रहे।

सम्वत् 1910 में आपका चातुर्मास जगराओं में हुआ। इस समय तक आपका नाम और त्याग अपने सहयोगियों और जैन-समाज में पर्याप्त सम्मान प्राप्त कर चुका था। दिल्ली से श्री अमर सिंह जी महाराज ने महाराज श्री विलासराय जी और श्री मोतीराम जी महाराज को जगराओं भेजा। पूज्य श्री जी के प्रेम को महाराज श्री रुपचन्द जी ने ऐसी सुन्दरता से अपनाया कि दिल्ली से पधारे हुए महाराज गण अति प्रभावित हुए।

यह चातुर्मास अपने महत्त्व के दृष्टिकोण से अद्वितीय था। इसमें आपकी तपस्या के साथ-साथ विद्वता तथा ज्ञान के अद्‌भुत चमत्कार भी देखने को मिले। आपके मनोहर व्याख्यानों ने जैन-धर्म की प्रचीनता और श्रेष्ठता भली भांति जनता के हृदय पटल पर चित्रित की। शुद्ध चरित्र सम्पन्न विद्वान की निष्काम सेवा कभी निरर्थक नहीं जाती। आपके सच्चे हृदय से निकले हुए सर्वप्रिय और गुणकारी वचन श्रोतागण के अन्तस् में समा जाते थे और वह गदगद् होकर आनन्द से प्रेमान्माद में झूमने लगते थे। अग्रवाल और अरोड़ वंशी महानुभाव आपसे बहुत प्रभावित हुए जैन धर्मावालम्वबियों मे ओसवालों की संख्या बहुत कम थी, परन्तु अब धर्म-प्रेमियों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई। इन जातियों के धर्म-प्रवेश और जैन-समाज की सहानुभूति के परिणामस्वरूप आपने जैन-धर्म की ओर जनता को अत्याधिक आकर्षित किया। चातुर्मास आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ।

यहाँ से मुनि महाराज प्रस्थान करके लुधियाना पहुँचे, जनता के उत्साह और सम्मान शुभागमन का स्वगत किया गया। आपके उपदेशों में महावीर के विश्व-व्यापी सन्देश की पूरी झलक दृष्टिगोचर होती थी। बहुत से लोगों ने जैन धर्म अपनाया। सैंकड़ों घरो में जैन-धर्म-प्रकाश हुआ। अग्रवाल जाति ने बड़ी उदारता दिखलाई और कई महानुभाव सपरिवार जैन-धर्मावल्म्बी बन गये।

ग्राम सुधार योजना के संस्थापक सहानुभूति का सन्देश

भ्रमण करते करते आप सम्वत् 1912 में एक छोटे से गाँव भीखी में पहुँचे। ग्रामों में भ्रमण करना उपदेश देना आपको विशेष रुचिकर था। महाराज श्री जी देश रूपी शरीर में ग्रामों को देश का मेरूदण्ड कहा करते थे और ग्रामों के सुधार को अपनी पुनीत कर्त्तव्य मानते थे। वे अधिकतर नगरों से दूर ग्रामों में ही विहार किया करते थे। यदि यह कहा जाये कि भारत में ग्राम सुधार योजना के प्रथम संस्थापक थे तो कोई अतियुक्ति नहीं होगी।

महाराज श्री जिस ग्राम में पधारे वहाँ के वासी अनपढ़ एवं संकीर्ण दलबन्दी के शिकार थे। अतः आपने समझाते हुए कहा-**"प्रेमं, सहानुभूति और दया मनुष्य के प्राकृतिक गुण हैं। यहाँ प्रत्येक प्राणी को दया की आकांक्षा है। यदि मनुष्य को कोई दुःख-सुख का साथी मिल जाता है तो उसके हृदय को शान्ति और सन्तोष प्राप्त होते हैं। ऐसे मनुष्य को अपत्तियाँ हंसती हुई आती हैं और शीग्र ही चली जाती हैं। सहानुभूति प्रदान करने वाले के प्रति हमारे हृदय में अत्यन्त सम्मान और आदर होता है, इसले हमें सदैव यह यत्न करना चाहिए कि हम एक-दूसरे के निकट आएं और एक-दूसरे की सहायता करें। आपका प्रेम आपके पड़ोसियों के लिए वरदान बन जाए और पड़ोसियों का प्रेम आपके लिए अमृत हो जाए। इसी में मनुष्य जन्म की सार्थकता है। स्वयं जीना और दूसरों को जीने देना यही धर्म का तत्व है और यही भगवान महावीर की वाणी है।"**

आपके इस व्याख्यान उपदेश का जन-मानस पर इतना गहरा प्रभाव हुआ कि चिरकाल से रूठे भाईयों ने एक-दूसरे से प्रेमालिङ्गन करते हुए वैर-विरोध के कुत्सित भाव को मित्रता में परिणत कर दिया। द्वेषाग्नि अब प्रेमानुराग बन गई। वैमनस्य दूर होकर ग्राम में सुख-शान्ति और सन्तोष का साम्राज्य स्थापित हो गया। एक-दूसरे की भलाई से सुसंगठित प्रयत्न होने लगे। इस प्रकार धर्म का उपदेश देते-देते सदाचार और शान्ति का प्रचार करते हुए आप धूरी पहुँचे।

धर्मस्थान को रणभूमि न बनाओ

श्री रुपचन्द जी महाराज जी बड़े स्पष्टवादी और दूरदर्शी थे। धूरी में आपने धर्मशाला में निवास किया। यह धर्मशाला गप्प-शप्प हांकने और व्यर्थ समय बिताने का अखाड़ा सा बनी हुई थी। एक दिन बहुत से लोग बैठे थे, वे बातों ही बातों में एक-दूसरे के साथ लड़ पड़े। दुर्वचनों के पश्चात हाथापाई तक मार-पीट की भी नौबत आ गई। रक्तपात होने ही वाला था

कि स्वामी श्री रुपचन्द जी महाराज उनके मध्य में कूद पड़े और अपने तेजोमय रूप दिखा कर उन्हें समझाते हुए कहा-

"बन्धोओ ! धर्म स्थान को रण-भूमि न बनाओ। यदि शक्ति के प्रदर्शन की अभिलाषा है तो आओ अपने मन को मारो, क्रोध का दमन करो, और गर्व की भस्मीभूत करके हार्दिक सन्तोष प्राप्त करो। शान्ति और आनन्द से जीवन व्यतीत करो। आपको ज्ञात होना चाहिए कि शुभ स्थान में एकत्रित होकर फक्कड़ों जैसा व्यवहार वार्तालाप निर्दयी होना शोभा नहीं देता। धर्म-स्थान कोई रण-क्षेत्र नहीं है, यह धर्म-क्षेत्र है। इसे लड़ाई-झगड़ों से मुक्त रखकर वही रहने दो जो इसको बनाने वाले का उद्देश्य था। सारे नगर में ले-देकर एक ही धर्मशाला हो और वही आप के अनाप-शनाप बातों और लड़ने-झगड़ने का अड्डा बन जाये ? कितनी शर्म की बात है। आप यह भी नहीं समझते कि किसी व्यक्ति विशेष के घर में यदि लड़ने-भिड़ने के लिए जाओगे तो अत्याचारी और अपराधी कहलाओगे। सोचा कि धर्म-स्थान में लड़ने-झगड़ने से तुम क्या कहलाओगे ?"

" सोचो समझो कि यह धर्म-स्थान है। यह कला-क्लेश के लिए नहीं है, आत्म-निग्रह के लिए है। यहाँ शत्रु बनकर नहीं आना चाहिए, किन्तु मित्र बनकर आईये। लड़ाई-झगड़ों के लिए समस्त संसार बड़ा है । धर्मशाला तो केवल धार्मिक कामों के लिए होनी चाहिए।"

" धर्म शाला किसी धर्मशील के दान से बना हुआ पुण्य धर्मस्थान है। धर्मस्थानों पर अधिकार जमाने की चेष्टा करने वाले नरक में कुलबुलाते कीड़ा ही बना करते हैं। यहां अपने हार्दिक कलुष को मिटाने के लिए आईये। लड़ाई-झगड़े आप को शोभा नहीं देता है। धर्म-स्थानों को धर्मस्थान ही रहने दो, इसे लड़ाई-झगड़ों मे नरक मत बनाईये।"

आपके इस व्याख्यान ने धूरीवासियों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि धर्मशाला सच्चे अर्थों में धर्मशाला बन गई और लोगों ने अनुभव किया कि महाराज के उपदेश का प्रत्येक शब्द सत्य और सारगर्भित है। भविष्य के लिए जनता ने अपने अवगुणों के परित्याग का प्रण किया। दुर्व्यवहार और दुराचार को छोड़ दिया। धर्मशाल को पवित्रता का ध्यान दिया जाने लगा।

महाराज जी के उपदेश की महिमा सुनकर लोग दर्शनों के लिए उमड़ पड़े। महाराज ने अगणित श्रद्धालुओं को धर्म और नैतिक जीवन चरित्र की शिक्षा दी और उन्हें जैन धर्म का अमृत-पान करवा कर नव जीवन का संचार किया। थोड़े ही दिन वहाँ ठहर कर महाराज श्री जी ने मालेरकोटला की तरफ विहार कर दिया और धर्मोपदेश मार्ग में देते हुए वहाँ पहुँचे।

निस्पृही योगी

महाराज श्री जी ने मालेरकोटला तो कोटला वालो में उत्साही श्रावक, सेठ साहूकार और व्यापारी नगर की सीमा के बाहर आपका स्वागत करने के लिए एकत्रित हुए। यह गुरु-भक्ति का प्रभावशाली दृश्य था, परन्तु संसार में भिन्न-भिन्न स्वभाव के लोग है। प्रत्येक मनुष्य अपनी मनोवृत्ति के अनुसार आचरण करता है। यह दृश्य एक दैवयोग से एक दो उठाईगिरों ने भी देखा, बस उनको बन आई। लगे अपना जाल बिछाने। एक ने अनुमान लगाते हुए कहा- यह आवश्य धनी-मानी पुरुष है, इसी कारण तो सत्कार हो रहा है। दूसरे ने कहा-इनके पास समान भी तो पर्याप्त है। तीसरा जरा गम्भीरता से बोला- धैर्य से यह पता लगाने का प्रयत्न करो कि रात को यह साधु कहां जाते हैं और कहाँ ठहरते हैं।

महाराज श्री जी ने प्रेमी श्रावकों के साथ नगर में प्रवेश किया, मार्ग में जो कोई रास्ते में आता हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता, प्रेम और भक्ति से नमस्कार करके साथ हो लेता। इस प्रकार एक विशाल जन-समूह के साथ आप जैन स्थानक में पधारे। महाराज श्री जी से मंगलपाठ सुनकर श्रावक

लौट गये। महाराज श्री जी ने सायं प्रतिक्रमण आदि धार्मिक कृत्य सम्पन्न किये और यात्रा के श्रम से थकावट के कारण महाराज सो गये। चोर ताक में थे ही, अवसर मिलने की देर थी कि सब वस्त्र और समान लेकर चम्पत हो गये। स्वामी जी की आँख खुली तो देखा सब कुछ उठ चुका है ।

प्रातः काल दर्शनाभिलाषी उपस्थित हुए तो महाराज को वस्त्रों और समान से रहित पाया। पूछने पर पता चला कि रात्रि को सब कुछ चोर ले उड़ें हैं। उदार-चित्त श्रावकों ने विनय-पूर्वक निवेदन किया, "महाराज! आवश्यकतानुसार अन्य वस्त्र स्वीकार करें ।" उत्तर दिया, "भाई जिनको वस्त्रों की आवश्यकता थी वे वस्त्र ले गए, इससे क्या हुआ? फिर वे कुछ जो ले गए हैं मेरे प्रमाद के कारण ले गए हैं, अतः मुझे मेरे प्रमाद का प्रायश्चित कर लेने दीजिए । इसलिए मैं चातुर्मास भर वस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा।"

तभी समीप बैठे हुए एक राज कर्मचारी ने निवेदन किया,"महाराज! चोर को ढूँढ कर उसे आवश्य दण्ड दिलवाया जाय़ेगा।"

महाराज ने सहज स्वभाव से उससे पूछा," उसको दण्ड किस अपराध का दिलवाओगे ? मुझे तो मेरी घोर निद्रा का दण्ड मिला है। एक साधु का इतना उन्मत्त होकर नहीं सोना चाहिए। जो सोता है, अवश्यमेव अपना सर्वस्व खो बैठता है।"

इस प्रकार कि स्वामी जी ने चार महीने अन्य वस्त्रों और आवश्यक समान के बिना ही बिता दिये और निद्रा पर इतने विजयी हुए कि तृण की आहट होने पर भी जाग जाते थे।

गुरु दर्शन एवं तीर्थयात्रा का आदर्श

आप जहाँ भी जाते, दर्शनाभिलाषीयों की भीड़ लग जाती जैन-जगत मे आपका नाम और तप का प्रभाव सूर्य के समान चमकता हुआ जन-मानस के अन्धकार को नष्ट करता रहा। आपके भदौड़ पधारते ही छोटा सा गांव

धर्म-प्रेमी जनता के लिए तीर्थ-स्थान बन गया। आपके व्यक्तित्व का आकर्षण शक्ति प्रतिदिन सैंकड़ों यात्रियों को भदौड़ ले जाती। भदौड़-निवासी भाईयों का सारा समय इन यात्रिओं की सेवा सुश्रुआ में व्यतीत होता। आतिथीयों का यथायोग्य सत्कार होता था। भदौड़ पहुँचने का मार्ग चारों और से ऊँचा-नीचा और कच्चा होने के कारण दुर्गम था। फिर भी आने वाले धर्म-प्रेमी यहाँ निरन्तर पहुँच रहे थे। यात्रियों की श्रद्धा और ग्राम निवासियों की निष्काम सेवा और भक्ति भाव अत्यन्त प्रशंसानीय थे, परन्तु जब दर्शनाभिलाषी सज्जन अपने साध घोड़ा गाड़ी आदि सवारियां लाने लगे तो ग्राम-निवासियों की अतिथी-सेवा में कुछ असुविधा होने लगी। सर्वहित-चिन्तक महाराज श्री से यह असुविदा छिपी नही, अतः उन्हों ने निर्भीक एवं स्पष्ट शब्दों में अपने प्रवचन में कहा-

" धर्म प्रेमियों ! प्रेम का सच्चा अपार्जन करो और प्रेमी भाईयों के निष्काम प्रेम का अनुचित लाभ न उठाओ। आवश्यकता का नियमित मात्रा से अधिक विस्तार करना, प्रेम और भक्ति का निरादर है। यह स्वार्थ है। प्रेम दिखावे में नहीं प्रेम सरलता मन , वचन और काया के सदव्यवहार में है।"

यदि आपको धर्मोपदेश से प्रेम है तो आप सवारी लेकर ठाठ-बाट से क्यों आते हो ? ग्राम निवासी भले ही आपका स्वागत करते हों और आपकी यथार्थ अतिथि-सेवा भी होती हो, परन्तु आपने कभी विचार नहीं किया कि साधु के पास आकर त्याग सीखना है और दूसरों के लिए सहानुभूति तथा प्रेम लाना है। आप जानते हैं, कि इस छोटे से ग्राम में अनेक नगरों से दर्शनाभिलाषी बड़ी-बड़ी संख्या में सवारियां और नौकर चाकर लेकर आते हैं और यहाँ इन सबके लिए मिठाईयाँ मिलनी अति कठिन हैं। निसन्देह भदौड़ निवासी इस परिपाटी को निभा रहे हैं, परन्तु यात्रियों का कर्त्तव्य है कि नगर-निवासीयों की कठिनाई का विचार करें.

यहाँ ठाठ-बाठ के साथ सवारी लेकर न आएं और न मिठाईयाँ ही खाएं। आवश्यकतानुसार सादा भोजन ही पर्याप्त है। यदि आपने अपने इस कर्त्तव्य का पालन किया, तो मुझे आपके धर्म-प्रेम की परीक्षा का यथोचित अवसर मिल जायेगा। अन्यथा मुझे इस कर्त्तव्य की उपेक्षा करने वाले सज्जनों के ग्राम में एक वर्ष न जाने का प्रण करना पड़ेगा।

यह उपदेश सुनकर श्रोताओं को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हुआ और उन्होंने मुनि जी को विश्वास दिलाया कि "महाराज! आदेशानुसार ही सब कार्य होगा। "

इस प्रकार मनिवर की दूरदर्शिता, समयानुसार सूझ और कर्त्तव्य-परायणता ने अगणित मनुष्यों को सामाजिक तथा आर्थिक कठिनाईयों और आकारण प्राप्त कष्टों को दूर कर दिया। प्राचीन रूढ़ियों की भयंकर विकृति का सुधार हुआ।

प्रेम ही मुक्ति का मार्ग है

यहाँ से आपने फरीदकोट को विहार किया और मार्ग में मुंदकी ग्राम में पधारे। यहाँ के लोगों को अहिंसा का मुक्ति मार्ग दर्शाते हुए एक मनोहर व्याख्यान में आपने सन्देश दिया-

" प्रेम एक पवित्र भाव है जो स्वार्थ और स्वेच्छाचार से रहित है। इसका प्रभाव प्राणी मात्र पर एक जैसा होता है। इसका एक उद्देश्य गुण, कर्म और स्वभाव को उनके वास्तविक रूप में देखना और उनका तदनुसार प्रयोग करना है। प्रत्येक जीव-जन्तु प्रेमाभिलाषी और प्रेम-मूर्ति है । यह भाव अति उच्चकोटि का और बहुत विस्तृत है प्रेम यदि " सत्यम् शिवम् सुन्दरम" के विशाल नियम पर अधारित है तो वह महान आकर्षण का उत्पादक होता है। यह विश्व के सभी प्राणियों में विद्यामान है और सभी विश्व के प्राणी इसके अन्तर्गत आते हैं। इसमें राग, द्वेष, मोह, माया अथवा

काम, क्रोध का लेशमात्र भी नहीं होता। प्रेम आत्मा का निजी गुण और प्राणी मात्र का परम धर्म है।"

" अहिंसा में प्रेम समाया हुआ है कि इनका पृथकाभाव अर्थात व्यक्तिगत रूप में ज्ञान प्राप्त करना, जानना, समझना और देखना असम्भव है। यह दोनों परस्पर एक स्वरूप हैं। प्रेम ही आत्म संयम है, जिससे शारीरक या मानसिक भोग-विलास का नाम तक नहीं।"

" प्रेम शब्द इतना सार्थकतापूर्ण हैं कि इसमें आशीर्वाद, शुभ-चिन्तन, प्रशंसा तथा सद्गुणों के सभी रूप समा जाते हैं। इसका निरन्तर खोज करो, गहराई तक पहुँचो और इसकी प्राप्ति के प्रयत्न किये जाओ।"

" प्रेम कामधेनु है, साधना ही इसकी बछिया है, इस बछिया को देखते ही इस कामधेनु के थनों में कामना-पूर्ति के दुग्ध की धाराएं स्त्रवित होने लगती हैं। दूध को यदि चाहते हो तो प्रेम की कामधेनु की सेवा करो। यह तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण करेगी ।"

" प्रेम से सूली भी पुष्पशैय्या बन जाती है। मृत्यु मनोहर फूल हो जाती है। आपात्तियां रूचिकर प्रतीत होने लगती हैं। प्रेम अपनी सार्थकता और व्यापकता के कारण शब्दकोष में सबसे महत्वपूर्ण शब्द है । प्रेम ज्ञान स्वरूप है, मानो यह स्वयं ज्ञान ही है। आत्म ज्ञान और सर्वज्ञता जो मुक्ति के साधन हैं, प्रेम ही है। प्रेम ही आत्मा का निजीगुण और निजी स्थान है। दूसरों के दुःख को अपना दुःख समझ कर उसे दूर करने में अत्यन्त सुख अनुभव करना और अपने आपको दूसरों की उन्नति और परोपकार के लिए समर्पित करना ही सच्चा प्रेम है। प्रेम सत्यमेव सुख स्वरूप है, अपने और पराये के लिए कल्याण कारी है।"

इस प्रकार धर्मोपदेश देते हुए आप फरीदकोट पहुँचे। यहाँ आपने चातुर्मास किया और बहुत से ज्ञान पिपासु आत्माओं को धर्मामृत का पान

कराते रहे। आपके उपदेशों ने जनता को इतना धर्म-प्रेमी बनाया कि सभी एक-दूसरे से बढ़कर धार्मिक उत्साह और धर्म-निष्ठा का परिचय देने लगे। स्थानक में मेला सा लगा रहता था। सामायिक, प्रतिक्रमण, शास्त्राध्ययन, थोकड़े और अन्य धार्मिक क्रियाएं और कार्यक्रमों में जनता बड़े चाव से सम्मिलित होती। धर्म में आस्था बड़ी और आपके दैनिक व्याख्यानों ने वास्तव में नगर निवासियों में नवीन धर्म-चेतना का संचार कर दिया। चातुर्मास समाप्त होते ही जगराओं की ओर चल दिये।

आपकी दार्शनिकता,तपोनिष्ठा, अनुभवशीलता तथा सच्चारित्रता के पुष्पों की सुगन्ध दूर-दूर तक फैल गई। जिसने भी आपकी शरण ली वह लाभान्वित हुआ, पूर्ण मनोरथ हुआ। आपकी वाणी से सत्य की ऐसी प्रतीष्ठा हुई कि आपके मुख से निकली हुई वाणी कभी मिथ्या नहीं हुई।

आपके तप ज्ञान और त्याग दूज के चन्द्रमा की भांति बढ़ते ही गये। वाक् सिद्धि समझें, चाहें आत्मसाक्षात्कार, यह गुण आपके उस महान व्यक्तित्व का साक्षी आवश्य है जिसकी ओर सहस्त्रों लोग आकर्षित हुए।

आपका दुबला, सांवला शरीर, शान्ति-वर्षण करते नेत्र, तेजस्वी मुख-मंडल विशाल ललाट और प्रभविष्णु वाणी के समक्ष बड़ों-बड़ों के मस्तक नत हो जाते थे।

आपके तपोमय व्यक्तित्व में शक्ति और शांति का अक्षय भण्डार था। आपने इस भण्डार से शक्ति और शान्ति के रत्न खूब बांटे, परन्तु अक्षय ही रहा और आज भी अक्षय है।

नियमित आहार और रसना पर विजय

आठ पहर में केवल एक बार आहार-सेवन आप का स्वभाव था। पका निष्मित भोजन दो रोटियां, दाल और दो बार पानी पीने तक सीमित था। रोगी होने पर अथवा जब कोई और खाद्य-वस्तु सेवन करनी होती तो उपरोक्त तीन में से कोई एक को छोड़ देते। गुड़ शक्कर अथवा शरबत लिया तो रोटी छोड़ दी। रोटी शक्कर से खाई तो दाल को छोड़ दिया। आपने

समस्त साधु जीवन काल में आप सदैव इस नियम का पालन करते रहे। आपने सब्जी और अचार साधु बनने के बाद कभी नहीं ग्रहण किया। एक दिन महाराज श्री बिहारी लाल जी आहार लाये, उस दिन दाल न मिली, खिचड़ी ले आये, दो रोटियाँ और दाल के अनुमान से अधिक खिचड़ी रख कर भेंट की आपने देखते ही पूछा-" बिहारी लाल ! खिचड़ी इतनी क्यों रखी गई है ?"

उन्होंने उत्तर दिया-" महाराज! सहज भाव से रखी गई है।"

आपने सरलता से कहा-" भाई ! इस प्रकार का भोजन-लालसा में मुझे मत फंसाओ, कहीं तुम्हारा अन्धा प्रेम दोनों के पतन का कारण न बन जावे। साधु के लिए युक्ताहार-विहार का पालन करना अनिवार्य है। अतः मैं अपने अहार-नियम को भंग नहीं करना चाहता। आदेशानुसार महाराज बिहारी लाल जी ने नियमित रूप से दाल के बराबर खिचड़ी रहने दी और तत्पश्चात् कभी ऐसी भूल नहीं की।"

आपके त्याग एवं वैराग्य के सम्बन्ध में में इतनी सार्वजनिक घटनाएं हैं कि उनसे प्रत्येक धर्म-प्रेमी आपका श्रद्धालु बन जाता है। धन्य है ऐसा महापुरुष जिन्हों ने अपने चरित्र-बल लिए एक जैन मुनि के पवित्र जीवन क्रम को अपना कर उसे सर्वसाधारण को श्रद्धा और सम्मान का पात्र बनाया।

महाराज की दिव्य शक्ति और सहज घटनाएं

आपका जीवन असाधारण घटनाओं और अद्‌भुत चमत्कारों से परिपूर्ण है। आप सीदे-सादे शब्दों में निष्काम-भाव से जो बात कहते थे वही पूरी हो जाती थी। आप ने कभी इसे चमत्कार या करामात नहीं कहा, परन्तु वह आलौकिक घटनाएं चमत्कारों के किसी प्रकार कम नहीं हैं। इनका वृत्तान्त अति विस्तृत, भावपूर्ण और बड़े महत्त्व का है। आप प्राय- कहा करते थे कि तपस्या और त्याग में अनन्त शक्ति है। ब्रह्मचर्य व्रत जीवन को ज्योर्तिमय

कर देता है और तप एवं वाणी-सिद्धि को जन्म देती है । आपके जीवन का महत्वपूर्ण घटनाओं में से कुछ का यहां संक्षिप्त उल्लेख किया जाता है। क्योंकि लम्बे समय अन्तराल के कारण पूर्व वृत मिलने सम्भव नहीं हैं . इनके पठन-पाठन और श्रवण से महाराज श्री जी के महान व्यक्तित्व का सहज अनुमान हो सकेगा।

चिन्तन के अनुरूप ही उपलब्धि

रायकोट में पण्डित हरिराम नामक ब्राह्मण वैद्य रहते थे। जब महाराज जी मल विसर्जन के लिए बाहर जाते थे तो वैद्य जी उनको आते देखकर आँखें बन्द कर लेते थे, एक दिन किसी श्रद्धालु ने आपसे निवेदन किया, " महाराज! आप दूसरे रास्ते से चलें जाया करें, हम से आपका यह अपमान देखा नहीं जाता ."

महाराज ने उत्तर दिया, " भाई ! आज पण्डित जी से मिलकर विचार विनिमय कर लेगें।"

आज वे पुनः उसी मार्ग से ही गये तो पण्डित जी ने पहले की भाँति आँखें बन्द कर ली। महाराज जी पण्डित जी के पास जा कर ठहर गये और उनसे पूछा-" पण्डित जी ! आपके द्वारा मुझे देखकर आँखें बन्द कर लेनो का क्या कारण है ?"

पण्डित जी ने उत्तर दिया-" मेरे धर्म में जैन-मुनि के दर्शन की आज्ञा नहीं है। इसी कारण दर्शन न हों जाने पर इसे अपशकुन माना जाता है ।"

आपने फिर प्रश्न किया-" पण्डित जी ! कृपया यह तो बताइये कि आपके शास्त्र मे ब्राह्मण के दर्शन का क्या महत्व है ?"

उत्तर मिला- " कार्य-सिद्धि और जीवन कल्याण।"

आप ने फिर पूछा-“ पण्डित जी ! तब मुझे आपके दर्शन करने से तो अति आनन्द और लाभ होगा? ”

उत्तर मिला-“ हां ! अवश्य.”

आपने तासरा प्रश्न किया-“ मेरे दृष्टिगोचर होने से आप की क्या दशा होगी ?”

वैद्य जी ने कहा-“बुरी ही होगी ।”

महाराज श्री जी ने उदारतापूर्वक वैद्य जी का भ्रम निवारण करते हुए उन्हें समझाया पर उनकी समझ में कुछ नहीं आया । वह अपनी बात से टस से मस नहीं हुआ. अन्त में महाराज श्री जी ने कहा-“ यह तो अपने-अपने हैं पण्डित जी ! जैसा मनुष्य सोचता है, वैसा ही होता है।”

कहते हैं कि पण्डित जी की आँखें उसी दिन से दुःखने लगी और चौथे दिन वैद्य जी की आँखों की ज्योति जाती रही।

शिकार का परित्याग

मुनि महाराज भादौड़ में विराजमान थे । शौचादि के लिए बाहर जाते समय भादौड़ के प्रतिष्ठित धनवान सरदार अतरसिंह शिकार को जाते मिल गये। सरदार साहिब ने महाराज को नमस्कार किया, परन्तु महाराज मौन खड़े रहे। सरदार साहिब ने विस्मित होकर पूछा-“ महाराज क्या अपराध है मेरा, मेरा नमस्कार स्वीकार नहीं हुआ ?”

आपने मर्म स्पर्शी वाणी मे उत्तर दिया- एक शिकारी और भिक्षु का क्या मेल सरदार साहिब ?

सरदार साहिब ने हृदय की वेदना प्रकट करते हुए उत्तर दिया- “महाराज! सन्तान नहीं है । शिकार तो केवल समय बिताने और मन

बहलाने का साधनमात्र बना रखा है। यदि सन्तान हो जाए तो मैं शिकार करना छोड़ दूँगा।"

आपने आदेश दिया-" परोपकार में निस्संदेह अपना भला है। सरदार जी यदि औरों का भला करोगे तो अवश्यमेव आपका भी भला होगा। इसलिए शिकार का त्याग से आपका भला होना अनिवार्य है । सन्तान होने या न होने का अधार मेरे कहने अथवा न कहने पर नहीं, यह तो आपके भाग्य की बात है।"

सरदार जी ने शिकार का परित्याग कर दिया और एक वर्ष बीतने पर ही सरदार साहिब के घर में पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर तो सरदार सागिब जीवन-पर्यन्त मुनि महाराज के सेवक बने रहे।

वचन सिद्ध महापुरुश स्वामी श्री रुपचन्द जी महाराज के जीवन का संस्मरण

पहले समय में विवाह शादियों में वेश्याओं को नचाने का रिवाज था। यह बड़ी कुप्रथा थी. एक सेठ ने जगरावां में अपने लड़के की शादी पर यदि यह प्रथा बन्द कर दी जाए, तो यह रिवाज हमेशा के लिए बन्द हो जायेगा । बिरादरी के प्रमुख लोगों ने महाराज श्री जी से कहा कि- आप चौधरी साहिब से कहें कि विवाह में वेश्याओं को नचाने की कुप्रथा बन्द करवाने में पहल करें। यदि वह इसका पालन करेंगे तो यह कुप्रथा हमेशा के लिए बन्द हो जाएगी। महाराज श्री जी ने कहा- बहुत अच्छी बात है। उन्होंने एक सेवक को चौधरी साहिब के पास भेजा. सेवक ने महाराज श्री जी का संदेश सेठ जी को दिया। सेठ ने कहा- अच्छा दुकान पर ग्राहक अधिक थे, वैसे समझ गया था कि मुझे किस लिए बुलाया है. सेठ ने सेवक से कहा- महाराज जी को जाकर कह दो अभी मेरे पास समय नहीं है, जब समय मिलेगा तब मैं आऊँगां। सेवक ने उसी तरह महाराज श्री जी को कह दिया। एक-दो दिन प्रतीक्षा की परन्तु वह नहीं आया।

सन्त बड़े सीधे-साधे तपस्वी एवं संयमी थे। हर समय साधना में लीन रहते थे. एक दिन स्वयं ही उसकी दुकान की ओर चल दिये। दुकान पर जा कर कहने लगे-"श्रावक! मैंने तुम्हें बुलाया था, आप क्यों नहीं आए ?" वह बोला- महाराज भूल गया था, आज शाम को अवश्य आऊँगां। सांयकाल के समय उपाश्रय में पहुँचा तो महाराज श्री जी ने कहा- देखो तुम्हारे लड़के की शादी है, शादी में एक बुरी प्रथा वेश्या नचाने की चल रही है । आप विवाह में ऐसा न करो, यह आप को शोभा नहीं देता, यदि आप छोड़ दोगे तो अन्य भी छोड़ेंगे। सेठ ने कहा- महाराज यह प्रथा कैसे बन्द हो सकती है, शादी में तो यह करना ही पड़ता है। वे सन्त पुरुष थे। सेठ सुखों से इतना आसक्त हो गया उसको यह भी ख्याल नहीं रहा कि सन्त मेरे भले के लिए कह रहें हैं। महाराज ने गुस्से में आकर कहा- अच्छा तुम शादी में सब कुछ करोगे ? तुम्हारे लड़के की शादी होगी तो तुम करोगे न।, जब शादी ही नहीं होगी तो तुम करोगे ही क्या ? सेठ दुनिया बदलते देर नहीं लगती। एक मिन्ट में तख्त वाला तख्ती पर और तख्ती वाला तख्त पर आ जाता है। यह कर्म चक्कर ऐसा ही होता है सेठ! सन्त के कहने पर सेठ का कारोबार फेल होने लगा, मार्किट में हवा खराब हो गई। तब सेठ को याद आया कि सन्त वाणी को न मानने पर, यह मुसीबत उसी का फल है।

सेठ फिर महाराज के पास गया और कहा- आपके कहने अनुसार ही काम करूँगा। महाराज बोले- मैंने तो पहले भी कुछ नहीं कहा और अब भी कुछ नहीं कह रहा हूँ। संयोग व्यक्ति की भावनानुसार ही बन जाते हैं। इसमें बन्धु न तेरा दोष है न मेरा दोष है ? जब कर्म अच्छा होता है, सब कुछ अच्छा होने लग जाता है .। न मेरे मन में कोई दुर्भावना है और न ही मेरे मन में कोई ईर्ष्या भाव है। ऐसा था उनकी वाणी का चमत्कार।

हंसमुख व्यक्तित्व

एक बार श्री रुपचन्द जी महाराज किसी के घर भिक्षा लेने गये। एक बहन मक्की की दो रोटियां उनको देने लगी और बोली- महाराज! मेरी लड़की मुटीयार यानि बड़ी हो गई है। इसके विवाह के लिए योग्य वर भी मिल गया है, लेकिन शादी के लिए रुपये चाहिए और बेटा भी जवान हो गया है। दोनों की शादी करनी है। महाराज ने पूछा-कितने रुपये चाहिए? वह बोली दोनों की शादी के लिए दो-दो हजार। इस पर महाराज हंस कर बोले- बहन! रोटी का सौदा बड़ा मंहगा है। एक एक रोटी दो- दो हजार में पड़े गी। ऐसा था उनका व्यक्तित्व। सभी उन्हें अपना समझकर अपना दुःख-सुख सुनाते थे और वह सहज भाव से उनको आशीर्वाद भी देते थे।

मूल है तो ब्याज की क्या कमी

श्री रुपचन्द जी महाराज का नियम था कि उनका व्याख्यान समाप्त होने पर कोई भी महिला वहीं बैठी न रह सकती थी। लेकिन एक बार एक वृद्धा व्यख्यान के बाद बैठी रही. महाराज ने उसे देखा और कारण पूछा तो वह बोली- महाराज! मेरे बच्चे के की सन्तान नहीं है. आप आशीर्वाद दीजिए अन्यथा मेरा वंश खत्म हो जाएगा। महाराज ने कहा-क्या नाम है तेरे बेटे का ? बुढ़िया बोली-मूला। महाराज ने कहा- जा, मूल है तो ब्याज की क्या कमी ? महाराज का आशीर्वाद ऐसा फला कि मूला के वंशज तथा मण्डी वाले आज हजारों परिवारों के रूप में संसार भर में फैले हुए हैं।

गर्व नहीं करना

रायकोट में लाला उद्यममल ओसवाल प्रतिदिन सामायिक किया करते थे। विवाह के कारण थोड़े दिन सामायिक न कर सके। तत्पश्चात विवाह के आनन्द में में धर्म-ध्यान में रूचि कम होने लगी। एक दिन स्थानक में

आए तो महाराज जी ने पूछा-"क्यों भी उद्यममल! सामायिक क्यों नहीं करते?"

गर्व से भरा हुआ उत्तर मिला-" महाराज ! सुसराल गया हुआ था। वहां समय ही नहीं मिलता था और कुछ यहाँ आ कर भी काम-काज बढ़ जाने से समय का अभाव हो गया है। अब तो दामाद भी बन गया हूँ महाराज."

आपने समझाया-" भाई ! जमाता बन गर्व न करना चाहिए, क्या पता है कि कितने जमाता बनाने पड़े। उद्यममल के घर सात लड़कियाँ हुई।"

सद्भावना और प्रेम

श्री वृषभान जी महाराज का दीक्षा संस्कार था । इस महोत्सव पर पधारने वालों की संख्या अनुमान से अधिक हो गई। खाने-पीने का प्रबन्ध सीमित रूप से किया गया था। प्रबन्धकर्त्ता चिन्तित होकर रुपचन्द जी महाराज की सेवा में उपस्थित होकर इस कठिनाई का वर्णन करके निवेदन किया कि "थोड़ी अपत्ति में हैं, कुछ नहीं सूझता क्या किया जाय? कार्य किस प्रकार चल सकेगा.?"

आत्मविश्वासी, तपस्वी मुनि ने आदेश दिया, " भाई! व्यर्थ की चिन्ता मत करो। सद्भावना और प्रेम से अपना कार्य करते रहो, शुभ संकल्प और आत्म-विश्वास बड़ी वस्तु है। जो जितना मांगे उसे उतना दो क्या कभी भोज्य पदार्थ मे कमीं आया करती है , खुला हाथ रखो, भण्डार भरे रहें गे। आज्ञानुसार खिलाना-पिलाना आरम्भ हुआ और सभी खाने वाले खा-पी चुके थे तो भोजन इतना बचा हुआ था कि इतने ही और लोग हो तो भोजन कर सकते थे।"

ऐसी सैंकड़ो घटनाओं से आपका जीवन ओत-प्रोत है। जिस अनुपम साहस के साथ मुनिवर ने सांसारिक विषय भोगों का परित्याग किया,

मोहक परिवारिक जाल को छिन्न-भिन्न किया, उसी प्रकार मन की चंचलता पर भी विजय प्राप्त की। काम, क्रोध, मोह, लोभ और मिथ्या मान मर्यादा की प्रबल श्रृंखला को तोड़ने के अतिरिक्त स्वयं जिन भगवान के सच्चे सेवक बनकर सर्वसाधारण को दर्शाया कि वीर प्रभु का एक साधु किस प्रकार अपने जीवन में अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का दर्श उपस्थित कर सकता है। उसका साकार रूप थे श्री रुपचन्द जी महाराज।

आदर्श जैन भिक्षु

आप जो कुछ कहते थे सहज भाव से कहते थे, उसमें काम, क्रोध का ताप और द्वेष की दुर्गन्ध नहीं होती थी . उसमें सुधार की भावना का योग रहता था और उसमें हित-चिन्तन की परोपकारमयी सद्भावना रहती थी।

अतः यह निर्णय करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है, उपरोक्त घटनाओं को चमत्कार समझें या करामात कहें अथवा दैवयोग, परन्तु इन श्रद्धालुओं के पीछे तपोबल की निष्ठा, ब्रह्मचर्य की महिमा और साधु जीवन की महिमा (चर्या) को स्वीकार करना ही पड़ता है।

आपने सांसारिक विषय-भोगों के परित्याग द्वारा जिस उत्साह और सात्विक लगन का परिचय दिया था, वैसी ही वीरता, एकाग्रता, और अटल आत्म विश्वास के साथ क्रोध, मिथ्याभिमान, माया और लोभ को दूर करने का आपने पूर्ण प्रयत्न किया था।

उपर्युक्त घटनाओं के उल्लेख से श्री स्वामी जी महाराज के किसी चमत्कार या करामात का प्रचार करने का कोई प्रयोजन नहीं है। इनसे तो केवल यह मालूम होता है कि महाराज श्री जी का जीवन सात्विक और नियमित था. घटनाओं का यथावत् समयानुसार वास्तविक रूप में स्वतः सिद्ध प्रयोग होता रहा। उनकी तत्त्व-दृष्टि एवं वैराग्य से इनका कुछ सम्बन्ध न था।

शिष्य और पदवी के मोह से विरक्त मुक्तात्मा

साधु जीवन का इससे अधिक कोई उत्तम आदर्श नहीं हो सकता। मुनि महाराज ने तपस्या, त्याग और वैराग्य में जीवन व्यतीत करते हुए विद्या-लाभ, स्वाध्याय और ज्ञान-प्राप्ति में व्यस्त रहकर भी मानव जाति के उद्धार के लिए शिक्षा-प्रद व्याख्यान देकर सम्पूर्ण मानव जाति को सही रास्ता बताया। उच्चतम आदर्श पदवी को छोड़कर केवल साधु बने रहने पर ही सन्तोष किया।

यदि आप चाहते तो आप के अनेक शिष्य बनाते और उन शिष्यों के संगठन करके बहुत बड़े सम्प्रदाय के आचार्य बन जाते, परन्तु आप जानते थे कि प्रायः शिष्य भी मोह का कारण बन जाया करते हैं।

शाश्वत सुख की प्राप्ति

अब आप की वृद्धावस्था आरम्भ हो चुकी थी और समस्त जीवन तपश्चर्यामय होने से शरीर कृष हो गया तो आपने जगराओं नगर में स्विर-वास कर लिया और अपने तपोबल के प्रभाव से अपने जीवन के अन्तिम समय को सन्निकट समझ कर स्थानक में एकत्रित हुए जनसमूह के समक्ष प्रवचन करते हुए कहा-

भव्यो ! यह आत्मा-स्वभाव से सिद्ध-बुद्ध और ज्ञानादि गुणों से समृद्ध है, किन्तु इसकी परिणति विभाव रूप में हो रही है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम,गोत्र और अन्तराय-इन आठ कर्मों के कारण बन्धन में बन्धा हुआ यह आत्मा, संसार-चक्र अर्थात नाना योनियों में जन्म-मरण के तथा अन्यान्य प्रकार के घोर कष्ट सहन कर रहा है। रंक हो या राव, साधन-सम्पन्न हो या निर्धन, सबल हो या निर्बल, कुलीन हो या अकुलीन, सभी को समान रूप से कर्म पीड़ा पहुँचाते हैं। इनका शासन निष्कंटक है, कर्म का फल सभी को भोगना पड़ता है।

यहां प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है, लेकिन अचरण विपरीत करता है। सांसारिक पदार्थों में सुख की गवेषणा करने में परिणाम में दुःख ही प्राप्त

होते हैं। सच्चा सुख तो आत्मा में ही विद्यामान है। सुख आत्मा का ही गुण है, अतः यह आत्मा को छोड़कर अन्यत्र नहीं रह सकता। अतएव सच्चे सुख के अभिलाषी को आत्मा की ओर उन्मुख होना चाहिए। मोह आदि विकार ज्यों–ज्यों शान्त होते जाते हैं, त्यो-त्यों कर्मों की शक्ति का ह्रास होता है और जैसे जैसे कर्मों की शक्ति क्षीण होती है, वैसे-वैसे दिव्य आनन्द का आविर्भाव होता है। अन्त में आत्मा जब अपनी साधना द्वारा सर्वथा वीतरागी और निष्काम हो जाती है तो अनन्त सुख का सागर उमड़ता है। ज्ञानीजनों ने स्वयं ही साधना की है और उसका उपदेश भी दिया है। साधना के विकास क्रम को भी उन्होंने सर्ववृत्ति और देशवृत्ति विकल्पों द्वारा समझाया है।

भव्य जीवों ! आप लोग अनादिकाल से इस मोह के प्रपंच में फंसे हैं। आपको इस प्रपंच से निकलने के लिए मनुष्य देह के रूप में मोक्ष मिली है तो आप ऐसा प्रयत्न करो कि आपको शाशवत सुख की प्राप्ति हो।

महाराज के इस अन्तिम उपदेश का जनता पर जो प्रभाव पड़ा, उससे ओसवाल बिरादरी के अतिरिक्त अनेकों अन्य धर्मावालम्बी व्यक्तियों ने भी श्रावक- धर्म को धारण कर लिया। महाराज जी का संकेत प्राय- सभी समझ गये और यह समाचार दूर-दूर तक फैल गया।

इस समय श्री स्वामी बिहारी लाल जी, श्री महेषदास जी, श्री कर्मचन्द जी, श्री धनपतराय जी, श्री कुन्दनलाल जी आदि सन्त आपकी सेवा में उपस्थित थे।

स्वामी श्री रुपचन्द जी महाराज के चातुर्मास

दीक्षा सम्वत् 1894

सम्वत्	शहर	सम्वत्	शहर
1895	अलवर	1898	जगरावां
1896	सुनाम	1899	बड़ेचा
1897	कोथा	1900	पटियाला

1901	जगरावां	
1902	छींटावाला	
1903	समाना	
1904	जगरावा	
1905	भदौड़	
1906	रायकोट	
1907	समाना	
1908	जगरावां	
1909	भदौड़	
1910	रायकोट	
1911	जगरावां	
1912	मालेरकोटला	
1913	फरीदकोट	
1914	समाणा	
1915	भदौड़	
1916	पटियाला	ठाणा-3
1917	समाना	ठाणा-2
1918	भदौड़	ठाणा-2
1919	नाभा	ठाणा-2
1920	समाना	ठाणा-3
1921	भदौड़	ठाणा-3
1922	नाभा	ठाणा-3
1923	समाना	ठाणां-3
1924	जगरावां	
1925	भदौड़	ठाणा-2
1926	रायकोट	

1927	मालेरकोटला
1928	जगरावां
1929	समाना
1930	भदौड़
1931	रायकोट
1932	जगरावां
1933	समाना
1934	रायकोट
1935	जगरावां
1936	जगरावा

ज्ञान का सूर्य अस्ताचल की ओर

सम्वत् 1937 में ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को प्रातःकाल शुद्ध हृदय से आपने संथारा ग्रहण किया और अपनी 69 वर्ष 4 मास और 2 दिन की आयु पूर्ण करके रात्रि दो बजे जगराओं नगर में देव-लोक गमन कर गये।

आपके स्वर्गवास का समाचार पाकर स्थान-स्थान से श्रावक वर्ग इस दिव्य अलौकिक विभूति के अन्तिम दर्शनार्थ जगराओं पहुँचे. अनुमानतः एक सौ नगरों के प्रतिनिधियों ने स्वर्गस्थ आत्मा को विशेष रूप से श्रद्धांजलियां अर्पित की। नगर के अनेक प्रेमियों का मानों समुद्र ही उमड़ पड़ा। आपके नष्वर शरीर को एक सुसज्जित मेघाडम्बरी-विमान में रखकर बहुमुल्य जरी, शाल-दुशाले इत्यादि 96 वस्त्र ओढ़ाये गये। अन्तिम शोभयात्रा का यह जुलूस जय-जयकार की ध्वनियों के साथ नगर के बीच में होता हुआ लाला छोनामल जी के बाग में पहुँचा, जहाँ चन्दन की पवित्र लकड़ियों से चित्ता सजाकर अन्तिम विदाई दी गई।

धन्य है ऐसी पवित्र और पुण्य आत्मायें जिनका सारा जीवन परोपकार जन-सेवा और देश उद्धार में ही व्यतीत होता है।

श्री स्वामी परमानन्द जी को श्री रुपचन्द जी महाराज का देव-लोक गमन की सूचना मिली तो आपक हृदय से ये मर्म-स्पर्शी भाव प्रकट हुए-

" हम आज संसार का श्रेष्ठतम, पथ-प्रदर्शक, दार्शनिक और सुधारक खो बैठे हैं. । जैन-समाज का सच्चा हितैषी नेता चल बसा है, ज्ञान,तप और त्याग का सूर्य अस्त हो गया है। इस क्षति का निवारण कठिन है।"

श्री बसन्तराय जी को जब श्री रुपचन्द जी महाराज के स्वर्गवास का समाचार मिला तो अपने हृदय के उद्गार प्रकट करते हुए आपने कहा-

" आज संयम और इन्द्रिय-निग्रह को समझने वाले व्यवहारिक रूप में उसका प्रयोग करने वाले की भयंकर क्षति हुई है । इस कमी की पूर्ति अत्यन्त कटिन है। आपका सच्चा त्याग और सच्चा उपदेश युग-युग तक अमर रहेगा। "

प्रचार का प्रभाव

सारा देश आपके प्रचार से प्रभावित हुआ। पंजाब प्रांत में तो कोई ऐसा स्थान न रहा होगा जहां आपने जनता को अपने धार्मिक- सिद्धांतों के सुदारस का पान न कराया हो।

संयुक्त प्रान्त राजस्थान और मेवाड़ में आपकी बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई. पंजाव की रियास्तों अर्थात् पटियाला, जींद, नाभा, फरीदकोट,, नालागड़,नाहन, सिरमौर, मालेरकोटला, बहावलपुर और राजस्थानी रियास्ते विशेषतः अलवर, बीकानेर आदि में आपके श्रद्धालुओं और जैन-धर्म प्रेमियों की संख्या अत्याधिक थी। अपने सदुपदेशों, प्रभावशाली व्याख्यानों और तर्क-परिष्कृत शास्त्रार्थों से अपने सदाचार, कर्त्तव्य-परायणता और धर्म-प्रेम की एक ऐसी अमर-ज्योति जागृत की, जिसने

जैन-धर्म के सर्व-व्यापी सिद्धांतो और नियमों को देश-देशान्तरों में प्रसारित किया।

अन्तिम शब्द

मनुष्य जन्म लेता है और सुख-दुःख का भोग करके मृत्यु की ओर बढ़ जाते हैं। पापी मृत्यु से भयभीत होने के कारण संकोच और क्षोभ से प्राण देते हैं, परन्तु धर्म-प्रेमी मृत्यु का स्वागत करते हैं। वे पुनर्जन्म में नई शक्ति साहस और उमंग के नवजीवन प्राप्त करने के लिए निःसंकोच झीर्ण-शीर्ण व्यर्थ वस्त्र की भांति यह जीवन समर्पित कर मृत्यु को अपना लेते हैं। ज्ञानी और पवित्र आत्माओं को मृत्यु का भय नही सताता। उन्हें तो मृत्यु एक ऐसे रक्षक और सहायक के समान शुभ-चिन्तक प्रतीत होती है। जिसका काम जरा-जर्जरित नश्वर शरीर का परित्याग कराकर नई शक्ति और नवीन जीवन प्रदान करना है।

इस दिव्यात्मा की संक्षिप्त पुण्य गाथा को लिखकर मेरी लेखनी पवित्र हो गई। इस चरित्र का जो भी सुधीजन अध्ययन व मनन करेंगे उसके सभी मनोरथ पूर्ण होंगे।

संस्कार स्थल छोनामल बाग में समाधि

जगरावां मे ही छोनामल जी के बाग में महान सन्त श्री रुपचन्द जी को अन्तिम विदाई दी गई थी। शताब्दी व्यतीत हो गई-मालिक बदलते रहे, अथक प्रयास करने पर भी संस्कार स्थल पर फसल नही उगी। यहाँ आज भी रात्रि समय स्वामी रूपचन्द जी महाराज, जाहिर बली, लप्पेशाह, मोहकमदीन इन चारों की मीटिंग होती है। चारो ओर से ज्योति सी जलती है। लपटें व प्रकाश चारों ओर से निकलता है। चारो ओलियों के मेले लगते हैं पुरानी समाधि पर। जब जमींदारों ने यहाँ चमत्कार घटित देखा तो स्वयं ही उनका संस्कार स्थल जैन समाज जगरावां को अर्पण कर दिया। आज जैन समाज और गुरु भक्तों के सहयोग से समाधि स्थल निर्मित हो गया है और चमत्कारी महान सन्त

श्री रुपचन्द जी महाराज के जयघोष चहूँ ओर गूँज रहें हैं। जैन तो क्या अजैन जनता भी बाबा जी की जय बाबा जी की जय बोलती है, बाबा जी की समाधि पर जाना है, यह कहती है। वहाँ के जमींदार लोग भी शुभ कार्य करने से पूर्व वहां प्रसाद चढ़ाते हैं और सन्त श्री रुपचन्द जी की जय बोलाते हैं और आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। ऐसे सन्तों का नाम लेने से ही कल्याण होता है, जो नकी अराधना करता है वह अपने संचित कर्मों से ही मुक्त हो जाता है।

श्री रुप समाधि स्थल जगरावां

पंजाब प्रान्त का सिद्ध तीर्थ स्थल श्री रुपचन्ज जी महाराज की समाधि स्थल जगराओं मे बनी है। इस दिव्यात्मा की समाधि से शायद ही कोई व्यक्ति खाली झोली लेकर लौटा हो। इस समाधि के पास बैठकर जिसने जो भी सोचा वही पूर्ण हुआ। आज इस समाधि की मानयता दूर-दूर तक फैल चुकी है।

श्री रुपचन्द एस. एस.जैन सभा जगराओं और दूर-दूर से आने वाले भक्तों के अथक प्रयास से अब इस समाधि का अत्यन्त एवं भव्य एवं दर्शनीय रूप दिया गया है। आज यह पंजाब प्रान्त का पुण्य शुद्ध तीर्थ बन चुका है। इसका विशाल भवन में चारों ओर संगमरमर से शोभायमान हो रहा है। आने वाले यात्रियों एवं दर्शनार्थियों के लिए उत्तम प्रबन्ध की व्यवस्था की गई है।

एक बार समाधि स्थल पर चोर आ गये और दानपात्र उठाने लगे। कहते हैं कि ऐसा चमत्कार हुआ कि वे अंधे हो गये और अपनी करनी पर पश्चाताप करने लगे तब उनके नेत्रों मे ज्यति वापस प्राप्त हुई।

जगरावां समाधि पर कार्य चल रहा था. एक दिन अचानक एस.एस. जैन सभा के प्रधान एक कार्यकर्त्ता के साथ आए और बोलें टाईलें लानी हैं, राज-मज़दूरों को मजदूरी देनी है, पैसे का क्या प्रबन्ध किया जाए ।

श्री हरबंसलाल जी ने उत्तर दिया- काम चलाने के लिए मुझ से चार सौ रुपये ले जाईये, टाईलों के लिए हम चार-पाँच हजार की व्यवस्था शीघ्र ही कर लेगें। वे सज्जन रुपये लेकर चले गये। हरबंस लाल जी एवं अन्य कार्यकर्त्ता समाधि पर लगे दान-पात्र को खोला तो उसमें 8000 रु निकले. जबकि दान कि औसत तीन-चार सौ से उपर नहीं होता था। महापुरुष चमत्कार नहीं दिखाते परन्तु **' देवा वितं नमंस्सन्ति जस्स धम्मे सया मणो'** धर्म कार्यों मे देवता भी चमत्कार प्रदर्शित करने में सहायक हो जाते हैं यह ऐसा ही चमत्कार था

****

जैन दिवाकर परम पूज्य श्रा नाथुराम जी महाराज की वंशावली